प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५७
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

प्रकाशकीय

क्रोपॉटकिन के नाम से हिंदी के पाठक भली-भांति परिचित हैं। वह रूस के महान् 'क्रांतिकारियों में से थे, पर उनकी क्रांति कोरमकोर तोड़-फोड़ की क्रांति नहीं थी। वह ऐसी थी, जो धीरे-धीरे अपना प्रभाव डालती है और व्यक्ति तथा समाज के मूल्यों को बदल देती है। वे उच्च कोटि के वैज्ञानिक तथा चिंतक भी थे। उनकी अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं, जिनसे बड़ी महत्त्वपूर्ण विचार-सामग्री प्राप्त होती है।

हाल में क्रोपॉटकिन की एक पुस्तक 'मण्डल' से प्रकाशित हुई है—'क्रांति की भावना'; और भी उनकी कई किताबें 'मण्डल' से निकल चुकी हैं। इस पुस्तक में उनकी आत्म-कथा ('दी मेमोयर्स ऑव ए रिवोल्यूशनिस्ट') के आधार पर उनके रूस में रहनेतक की जीवनी का सार दे दिया गया है। एक रेखा-चित्र में उनके पूरे जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। साथ में उनके जेल से भागने का वृत्तांत भी उनकी आत्म-कथा में से दिया गया है, जो इतना रोचक और रोमांचकारी है कि पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

आशा है, पाठकों को इस पुस्तक से कुछ स्फूर्ति मिलेगी और वे इसके प्रसार में सहायक होंगे।

—मंत्री

विषय-सूची

एक क्रांतिकारी के संस्मरण

: १ :

प्रिंस क्रोपॉटकिन : रेखा-चित्र

"जनाब व्लादीमीर इलियच (लेनिन), जब आपकी आकांक्षा तो यह है कि हम एक नवीन सत्य के मसीहा बनें और नवीन राज्य के संस्थापक, तो फिर आप किस प्रकार ऐसे बीभत्स सरकारी अनाचारो और ग़ैर-मुनासिब सरकारी तौर-तरीकों को अपनी स्वीकृति दे सकते है, जैसेकि किसी अपराध के लिए अपराधी के नाते-रिश्तेदारों को गिरफ़्तार कर लेना ? इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप ज़ारशाही के विचारों से चिपके हुए है। पर शायद उन निरपराध आदमियों को पकड़कर आप अपनी जान की रक्षा करना चाहते हैं। क्या आप इतने अंधे होगए है और अपनी तानाशाही के विचारों के इतने ग़ुलाम बन गए है कि आपको यह बात नही सूझती कि आप-जैसे यूरोपियन साम्यवाद के अग्रणी के लिए यह कार्य (लज्जाजनक तरीक़ों द्वारा निरपराधों की गिरफ़्तारी) सर्वथा अनधिकार चेष्टा है ? आपका यह काम भयंकर रूप से त्रुटिपूर्ण तो है ही, बल्कि उससे यह भी प्रकट होता है कि आप मृत्यु से डरते है, जो सर्वथा तर्क-विहीन बात है। उस साम्यवाद के विषय में क्या कहा जाय, जिसका एक महत्त्वपूर्ण रक्षक इस प्रकार ईमानदारी की प्रत्येक भावना को पैरों तले कुचलता जाता है ?"

यह है उस लाजवाब पत्र का एक अंश, जिसे अपने जीवन के अंतिम दिनों में (अपनी मृत्यु से दो महीने पूर्व) क्रोपॉटकिन ने लेनिन को लिखा था। लेनिन

उन दिनों विशाल रूसी राज्य के निरंकुश शासक थे और क्रोपॉटकिन ४१ वर्ष के देश-निकाले के बाद चार वर्ष अपनी मातृभूमि के दमघोंटू वातावरण में काटकर परलोक-गमन की तैयारी कर रहे थे। इन शब्दों में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के उस महापुरुष की आत्मा बोल रही है, जिसने कभी अन्याय के साथ समझौता करना मुनासिब न समझा, जिसने साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर समान रूप से ज़ोर दिया और जिसने ईमानदारी तथा अपरिग्रह का वह दृष्टांत उपस्थित कर दिया, जिसकी मिसाल संसार के राजनैतिक कार्यकर्ताओं के इतिहास में दुर्लभ ही है।

जब केरेंस्की ने क्रोपॉटकिन से कहा, "आप हमारे सरकारी मंत्रि-मंडल में चाहे जिस पद को चुन लीजिए, वही आपको अर्पित हो जायगा", उस समय क्रोपॉटकिन ने उत्तर दिया था—"मंत्रित्व के कार्य की अपेक्षा तो मैं जूतों पर पालिश करनेवाले चमार का काम अधिक आदरणीय तथा उपयोगी मानता हूं।" इसी प्रकार दस हजार रूबल की पेंशन के प्रस्ताव को उन्होंने ठुकरा दिया और ज़ार के शीतकालीन महलों के निवास की सर्वथा उपेक्षा की। यह तो हुई लेनिन के पूर्व के शासकों के समय की बात; स्वयं साम्यवादी सरकार के शिक्षा-मंत्री लूनाचरस्की ने जब क्रोपॉटकिन को लिखा, "आप सरकार के ढाई लाख रूबल लेकर अपनी किताबों के छापने का अधिकार हमें दे दीजिए", तो क्रोपॉटकिन ने उत्तर दिया—"मैंने तो कभी शासन से पैसा लिया नहीं और न अब ही सरकारी सहायता ग्रहण कर सकता हूं।" यह उन दिनों की बात है, जब क्रोपॉटकिन को वृद्धावस्था के अनुरूप पर्याप्त भोजन भी नहीं मिलता था, जब उनके पास रोशनी की भी कमी थी और कोई सहायक भी नहीं था।

तो फिर आदर्शवाद को पराकाष्ठा तक पहुंचा देनेवाले क्रोपॉटकिन अपनी गुज़र-बसर कैसे करते थे? देश-निकाले के ४१ वर्ष उन्होंने अपनी लेखनी के बल-बूते पर ही काट दिए! इसमें भी अराजकवादी लेखों से उन्होंने एक पैसा नहीं कमाया। वह अत्यंत उच्चकोटि के वैज्ञानिक थे और विज्ञान-संबंधी लेखों तथा टिप्पणियों से उन्हें कुछ मजदूरी मिल जाती

थी। बड़ी सादगी के साथ उन्होंने अपने आत्म-चरित में लिखा है—"अगर रूस से पर्याप्त समाचार आ जाते अथवा वैज्ञानिक विषयों पर भी नोट स्वीकृत हो जाते, तो रोटी-चाय के साथ मक्खन भी मिल जाता था, नहीं तो रूखी रोटी पर ही गुज़र करनी पड़ती थी।"

सुप्रसिद्ध लेखक फ्रैंक हैरिस ने क्रोपॉटकिन के इंगलैण्ड के प्रवास के दिनों के आतिथ्य का एक अच्छा शब्द-चित्र खींचा है—"क्रोपॉटकिन की धर्मपत्नी सोफी भोजन तैयार कर रही हैं, पति के लिए, छोटी-सी पुत्री के लिए और अपने लिए, कि इतने में कोई अतिथि महोदय न जाने कहां से आ टपके! क्रोपॉटकिन ने शीघ्र ही भीतर जाकर कहा—'सोफी, जरा साग में थोड़ा पानी मिला देना।' थोड़ी देर बाद एक और अतिथि देव पधारे और क्रोपॉटकिन को फिर भीतर जाकर कहना पड़ा—'कुछ पानी और भी।' इस प्रकार की क्रिया कई बार करनी पड़ती और सोफी को ढाई आदमियों के बजाय छः-सात आदमियों को भोजन कराना पड़ता! मेहमानदारी क्रोपॉटकिन के अत्यंत प्रिय गुणों में से थी और कोई बिल्कुल अजनबी आदमी भी उनके घर पर संकोच अनुभव न करता था।"

संसार में अनेक राजनैतिक महापुरुष हुए है और होंगे, पर मस्तिष्क की विशालता, हृदय की उदारता, चरित्र की स्वच्छता और जीवन की उच्चता के ख़याल से क्रोपॉटकिन का दृष्टांत प्रायः अनुपम ही सिद्ध होगा। वैसे प्रारंभिक तथा यौवन के वर्षों की दृष्टि से क्रोपाटकिन के जीवन का सर्वोत्तम वृत्तांत तो उनके आत्म-चरित 'मेमोयर्स ऑव ए रिवोल्यूशनिस्ट' से ही मिल सकता है, पर वह ग्रंथ सन् १८९८ तक का ही है और उसके बाद क्रोपॉटकिन २३ वर्ष और जीवित रहे थे। इस कारण उनके एक विस्तृत जीवन-चरित की आवश्यकता थी और उसकी पूर्त्ति जार्ज बुडकोक और आइवन अवाकुमोविक नाम के दो ग्रंथकारों ने की है। (प्रिंस पीटर क्रोपॉट-किन—प्रकाशक बोर्डमैन)।

क्रोपॉटकिन का जन्म सन् १८४२ में हुआ और मृत्यु १९२१ में। उनके जीवन-चरित में तत्कालीन रूस का एक चलता-फिरता चित्र दिखाई देता

है। उनका आत्म-चरित इतनी खूबी के साथ लिखा गया है कि उसे उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वोत्तम आत्म-चरित कहा जाता है। क्रोपॉटकिन का जीवन एकांगी न था, वह बहुअंगीन था। क्रांतिकारी अराजकवादी तो वह थे ही, पर साथ-ही-साथ संसार के भूगोलवेत्ताओं में भी वह शिरोमणि थे और समाजविज्ञान के भी जाने-माने आचार्य। रूस तथा यूरोप के सत्तर वर्ष के इतिहास पर भी उनके ज़ीवन से विशेष प्रभाव पड़ा है।

क्रोपॉटकिन के इस जीवन-चरित को पढ़ते हुए हमें उनके और गांधीजी के जीवन तथा दृष्टिकोण में अद्‌भुत साम्य प्रतीत हुआ। साधनों की पवित्रता पर वह उतना ही ज़ोर देते थे, जितना कि महात्मा गांधी। मेरी गोल्ड स्मिथ नामक एक यहूदी अराजकवादी ने लिखा है—"जो भी नवयुवक क्रोपॉटकिन से मिलने जाता था, उसका कथन वह बड़ी प्रेमपूर्ण मुस्कराहट और सौम्य भावना से सुनते थे; पर एक बात थी, वह यह कि यद्यपि प्रत्येक ईमानदार तथा उत्साही युवक के प्रति उनका व्यवहार उदारतापूर्ण रहता था, तथापि साधनों के चुनाव के विषय में काफी कठोरता से काम लेते थे। प्रचार के कुछ ढंगों को क्रोपॉटकिन असह्य मानते थे। अनुचित साधनों का ज़िक्र करते हुए उनका स्वर कठोर हो जाता था और उनकी निंदा बिना किसी लगा-लेसी के होती थी। 'चाहे जैसे बुरे-भले साधनों से अपने लक्ष्य की प्राप्ति' इस सिद्धांत से उन्हें घोर घृणा थी और कोई भी प्रश्न हो—चाहे संगठन का, या रुपये एकत्र करने का, या विरोधियों के प्रति व्यवहार का, या दूसरी पार्टियों के साथ संबंध स्थापित करने का—अगर कोई साधनों की पवित्रता को नगण्य मानता, तो वह उसे नफ़रत की निगाह से देखते थे और उसे निंदनीय मानते थे।"

श्री जवाहरलालजी का कथन है कि 'साधनों की पवित्रता' पर जोर देकर महात्माजी ने राजनीति को बड़े ऊंचे धरातल पर ला दिया। संसार की राजनीति को यह उनकी एक बड़ी देन थी। इस विषय में क्रोपॉटकिन उनके अग्रणी ही थे।

शिक्षा, कृषि, शारीरिक श्रम का महत्त्व और विकेंद्रीकरण के सिद्धांतों

पर तो दोनों महापुरुषों के विचार बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। सन् १८९६ में जब टाइनसाइड के कुछ कार्यकर्ता एक कृषि-संघ कायम करके खेती बढ़ाना चाहते थे, क्रोपॉटकिन ने उन्हे एक पत्र लिखकर प्रोत्साहित किया था और साथ ही मार्ग की बाधाओं के विषय में भी आगाह कर दिया था। उन्होंने बतलाया था कि छोटे समूह में अक्सर झगड़े उठ खड़े होते है, शहरी कार्यकर्ताओं के लिए भूमि पर काम करना मुश्किल हो जाता है। पूजी की कमी का खतरा अलग रहता है और संन्यासीपन की भावना भी गलत रास्ते पर ले जाती है। इसके बाद उन्होंने लिखा था—"यदि कृषि का कार्य तुमको आकर्षक लगता है तो उसीको ग्रहण करो। तुम्हें उसमे अपने पूर्वजों की अपेक्षा सफलता की आशा अधिक है। कम-से-कम तुम्हें सहानुभूति मिलेगी ही और मेरी सद्भावना तो बराबर तुम्हारे साथ रहेगी।"

क्रोपॉटकिन ने कृषि के विषय में भी अनुसंधान किए थे। जब वह फ्रांसीसी जेल में थे, तो सरकार ने उन्हें अपने कृषि-संबंधी प्रयोगों के लिए एक खेत दे दिया था, और ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने जो प्रयोग वहां किए थे, उन्होंने कृषि-जगत् में एक क्रांति ही कर दी! इन्ही प्रयोगो के आधार पर उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'फील्ड, फैक्टरीज एंड वर्कशाप' लिखी। नई तालीम के अनेक मूल सिद्धांत इस पुस्तक मे मौजूद हैं।

क्रोपॉटकिन के जीवन-चरित के लेखकों ने लिखा है—"क्रोपॉटकिन तथा उनके साथियों मे आतंकवाद पर बराबर मतभेद रहा।" स्वयं क्रोपॉटकिन ने भी एक जगह लिखा है—"साधारणतः यह कहना ठीक होगा कि आतंक की प्रतिष्ठा एक सिद्धांत के रूप मे कर देना मूर्खतापूर्ण है।" इस संबंध में सन् १८९३ की एक महत्त्वपूर्ण घटना यहा दी जाती है। कोयले की खानों में हड़ताल होगई थी। इंग्लैंड के मजदूर नेता एक होटल में इकट्ठे हुए थे और उन्होंने क्रोपॉटकिन को भी निमंत्रित किया था। जबतक खान के मजदूरों के कष्टों के निवारण की चर्चा चलती रही, सभी लोग एक-दूसरे से सहमत रहे, पर ज्योंही उपायों का विषय छिड़ा कि क्रोपॉटकिन की 'शांति-प्रियता' ने मानो मेज पर विस्फोटक का काम किया। मजदूर-दल के सभी

नेता सरकार के खिलाफ और कठोर उपाय काम में लाने के पक्षपाती निकले। इसके विपरीत क्रोपॉटकिन का कहना था कि हमें सत्याग्रह, बीच-बचाव तथा प्रचार से ही काम लेना चाहिए। इस वाद-विवाद का नतीजा यह हुआ कि सभा भंग होगई। टामस मैन नामक मजदूर नेता बार-बार चिल्ला रहे थे—"हमें विध्वंस की नीति का आश्रय लेना चाहिए, चीजों को तोड़-फोड़ डालना चाहिए, ज़ालिमों को ख़त्म कर देना चाहिए।" लेकिन ज्योंही कुछ शांति होती, प्रिंस क्रोपॉटकिन अपने वैदेशिक लहजे में बड़ी विनम्रता से बराबर यही कहते सुनाई देते—"नहीं, विनाश नहीं, हमें निर्माण करना चाहिए। हमें मनुष्यों के हृदय का निर्माण करना चाहिए।" ये शब्द तो बिल्कुल महात्मा गांधी के जैसे ही प्रतीत होते हैं; और उन दिनों—१८९३ में—महात्माजी ने दक्षिण अफ्रीका में वकालत के लिए प्रवेश ही किया था।

देश का—देश का ही नही, संसार का—यह दुर्भाग्य है कि हमारे यहां संसार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विचारकों के विचारों का सारांश निकालनेवाले विद्वान बहुत कम हैं, और खास तौर से आज तो, जबकि दुनिया चौराहे पर खड़ी हुई है और उसके सामने ठीक मार्ग ग्रहण करने का प्रश्न उपस्थित है, यह विषय और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। एक मार्ग है क्रोपॉट-किन तथा गांधीजी का और दूसरा है मार्क्स और स्तालिन का।

महापुरुषों के जीवन-चरित में अद्भुत स्फूर्त्ति प्रदान करने की सामर्थ्य होती है, और इस दृष्टि से क्रोपॉटकिन का जीवन-चरित खासा महत्व रखता है। क्या अजीब सिनेमा-जैसा दृश्य वह हमारी आंखों के सामने ला उपस्थित करता है! एक अत्यंत प्राचीन और उच्चवंश में जन्म, ज़ारशाही के अत्या-चारों का घनघोर अंधकार, गुलामी की प्रथा का दौर-दौरा, आठ वर्ष की उम्र में ज़ार के पार्षद बालक, १२ वर्ष की अवस्था में फ्रेंच भाषा का अध्ययन और रूसी राजनैतिक साहित्य में रुचि, अपने बड़े भाई एलेक्जेंडर के साथ हार्दिक प्रेम, फौजी स्कूल में शिक्षा, साइबेरिया की यात्रा—गवर्नर जनरल के ए. डी. सी. बनकर फिर वहां से त्यागपत्र, तत्पश्चात् सेंट पीटर्सबर्ग के विश्वविद्यालय में पांच वर्ष तक गणित तथा भूगोल का अध्ययन, क्रांतिकारी

दल में सम्मिलित होना, यूरोप की यात्रा और वहां अराजकवादी संस्थाओं का संपर्क, रूस लौटकर क्रांतिकारी विचारों का प्रचार आदि । इसके बाद का दृश्य ए. जी. गार्डिनर के रेखाचित्र में देख लीजिए :

"नाटक का पर्दा बदलता है। जार्ज निकोलस की अंधेरी रात दूर होगई। लेकिन उसके बाद दासत्व-प्रथा बंद होने के कारण थोड़ी देर के लिए जो उषाकाल आया था, उसे स्तोलिपिन प्रतिक्रिया के अंधकार ने ढंक लिया और रूस फिर पुलिस के अत्याचारों से कुचला जाने लगा। सैकड़ो निरपराध आदमी फांसी पर लटका दिये गए और हजारों ही जेल में ठेल दिये गए, अथवा साइबेरिया में अपनी कब्र खोदने के लिए निर्वासित कर दिये गए। सारे रूस पर भय और आतंक का राज्य था, लेकिन भीतर-ही-भीतर रूस जाग्रत हो रहा था। जार एलेक्जेंडर द्वितीय ने अपने शासन का सूत्र दो जालिम पुलिस अफसरों—ट्रेपोफ और शुवालोफ—को सौंप दिया था। वे चाहे जिसे फांसी पर लटका देते थे और चाहे जिसे निर्वासित कर देते थे। लेकिन फिर भी वे क्रांतिकारी गुप्त समितियों की कार्यवाहियों को रोकने में सफल नहीं हुए। ये समितियां दनादन स्वाधीनता तथा क्रांति का साहित्य जनसाधारण में बांट रही थीं। इस घोर अशांतिमय वायुमंडल में भेड़ की खाल ओढ़े एक अद्भुत व्यक्ति, भूत की तरह, इधर-से-उधर घूम रहा है। उसका नाम बोरोडिन है। पुलिस के अफसर हाथ मल-मलकर कहते हैं—'बस, अगर हम लोग बोरोडिन को किसी तरह पकड़ लें तो इस क्रांतिकारी सर्पिणी का मुंह ही कुचल जाय—हां, बोरोडिन को और उसके साथी-संगियों को!' लेकिन बोरोडिन को पकड़ना आसान काम नहीं। जिन जुलाहों और मजदूरों के बीच में वह काम करता है, वे उसके साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार नहीं। वे सैकड़ों की संख्या में पकड़े जाते हैं, कुछ को जेल का दंड मिलता है और कुछ को फांसी का; पर वे बोरोडिन का असली नाम और पता बतलाने के लिए तैयार नहीं होते।

"सन् १८७४ की वसंत ऋतु। संध्या का समय। सेंट पीटर्सबर्ग के सभी वैज्ञानिक और विज्ञान-प्रेमी ज्योग्राफिकल सोसाइटी के भवन

में महान् वैज्ञानिक प्रिंस क्रोपॉटकिन का व्याख्यान सुनने के लिए एकत्र हुए हैं। फिनलैंड की यात्रा के परिणामों के विषय में उनका भाषण होता है। रूस के 'डाइल्यूवियल' (जलप्रलय) काल के विषय में वैज्ञानिकों ने जो सिद्धांत अबतक कायम कर रखे थे, वे एक-के-बाद दूसरे खंडित होते जाते हैं और अकाट्य तर्क के आधार पर एक नवीन सिद्धांत की स्थापना होती है। सारे वैज्ञानिक जगत् में क्रोपॉटकिन की धाक जम जाती है। इस महापुरुष के मस्तिष्क के विषय में क्या कहा जाय ! उसका शासन भिन्न-भिन्न ज्ञानों तथा विज्ञानों के समूचे साम्राज्य पर है। वह महान् गणितज्ञ है, ग्रंथकार है (बारह वर्ष की उम्र में उसने उपन्यास लिखे थे !), वह संगीतज्ञ है और दार्शनिक। बीस भाषाओं का वह ज्ञाता है और सात भाषाओं मे वह आसानी के साथ बातचीत कर सकता है। तीस वर्ष की उम्र में रूस के चोटी के विद्वानों में—उस महान् देश के कीर्ति-स्तंभों मे—प्रिंस क्रोपॉटकिन की गणना होने लगती है। प्रिंस क्रोपॉटकिन को बाल्यावस्था मे फौजी काम सीखना पड़ा था, और पांच वर्ष बाद जब उनके सामने स्थान के चुनाव का सवाल आया तो उन्होंने साइबेरिया को चुना था। वहां सुधार की जो योजना उन्होंने पेश की और आमूर दरिया की यात्रा करके एशिया के भूगोल की भद्दी भूलों का जिस तरह संशोधन किया, उससे उनकी कीर्त्ति पहले से ही फैल चुकी थी, पर आज तो भौगोलिक जगत में विजय का सेहरा उन्हींके सिर बांध दिया गया। प्रिंस क्रोपॉटकिन ज्योग्राफिकल सोसायटी के 'फिजीकल ज्योग्राफी' विभाग के सभापति मनोनीत किये गए। भाषण के बाद ज्योंही गाड़ी में बैठकर वह बाहर निकले, एक दूसरी गाड़ी उनके पास से गुज़री; एक जुलाहे ने उस गाड़ी में से उचककर कहा—'मिस्टर बोरोडिन, सलाम ।' दोनों गाड़िया रोक दी गईं। जुलाहे के पीछे खुफिया पुलिस का एक आदमी उस गाड़ी में से कूद पड़ा और बोला—'मिस्टर बोरोडिन उर्फ प्रिंस क्रोपॉटकिन, मैं आपको गिरफ्तार करता हूं।' उस जासूस के इशारे पर पुलिस के आदमी कूद पड़े। उनका विरोध करना व्यर्थ होता, क्रोपॉटकिन पकड़ लिये गए। विश्वासघाती जुलाहा दूसरी गाड़ी में उनके पीछे-पीछे चला।"

इसके बाद वह किस तरह किले की जेल में डाल दिये गए, वहां उन्हें क्या-क्या यातनाएं सहनी पड़ीं, और वहां से वह किस तरह भाग निकले, इसका अत्यंत मनोरंजक वृत्तांत पाठक इस पुस्तक में पढ़ सकते हैं।

सन १८७६ से लेकर १९१७ तक ४१ वर्ष क्रोपॉटकिन को स्वदेश से बाहर व्यतीत करने पड़े। कठोर-से-कठोर साधना का यह लंबा युग केवल उनके जीवन का ही नहीं, संसार के राजनैतिक इतिहास का भी एक महत्व-पूर्ण अध्याय है। इस बीच वह स्विटजरलैंड और फ्रांस में भी रहे और दो-ढाई वर्ष के लिए उन्हें फ्रांसीसी जेल की भी हवा खानी पड़ी। उनके सभी महत्वपूर्ण ग्रंथ इसी युग में लिखे गए। इनमें कई तो ऐसे हैं, जिनका विश्वव्यापी महत्त्व है, जैसे 'पारस्परिक सहयोग' और 'रोटी का सवाल' आदि। उनके क्रांतिकारी लेखों के भी कई संग्रह भिन्न-भिन्न भाषाओं में छपे थे और अनेक रचनाएं हिंदी में भी छप चुकी है।

क्रोपॉटकिन ने लंदन में सन् १८८६ में 'फ्रीडम' नामक पत्र प्रारंभ किया, जो अबतक चल रहा है। इसी वर्ष क्रोपॉटकिन के जीवन की एक अत्यंत दु:खमय घटना घटी, उनके बड़े भाई ने साइबेरिया से लौटते हुए रास्ते में आत्मघात कर लिया। उन्हें भी देश-निकाले का दंड दिया गया था, जिसके कारण बारह वर्ष उन्हें साइबेरिया में बिताने पड़े थे। जब उनके छुटकारे के दिन निकट आए तो उन्होंने अपने बाल-बच्चों को पहले ही रूस रवाना कर दिया और फिर एक दिन निराशा से अभिभूत होकर अपने-आपको गोली मार ली! वह महान् गणितज्ञ थे, खगोलशास्त्र के अद्भुत ज्ञाता थे, और ज्योतिष-शास्त्र के बड़े-से-बड़े विद्वानों ने उनकी कल्पनाशील प्रतिभा की बहुत प्रशंसा की थी। महज़ आशंका के आधार पर उन्हें जारशाही ने देश-निकाले का दंड दे दिया था, जबकि क्रांतिकारी दलों से उनका कोई भी संबंध न था! यदि उन्हें स्वाधीनतापूर्वक अपने खगोल-संबंधी अनुसंधान करने की सुविधा होती, तो उस शास्त्र की उन्नति में न जाने वह कितने सहायक हुए होते। पर निरंकुश शासकों में भला इतनी कल्पना-शक्ति कहां! क्रोपॉटकिन

के हृदय मे उनके प्रति अत्यंत श्रद्धा थी। इन दोनों भाइयों का प्रेम-पूर्ण व्यवहार आदर्श था, पर क्रोपॉटकिन ने अपनी इस हृदय-वेधक दुर्घटना का जिक्र अत्यंत संयम के साथ केवल एक वाक्य में किया है—"हमारी कुटिया पर कई महीने तक दुःख की घटा छाई रही।" क्रोपॉटकिन ने अपनी भाभी तथा भतीजे-भतीजियों की यथाशक्ति सेवा की।

क्रोपॉटकिन की समस्त शिक्षाओं का आधार उनकी मनुष्यता थी। वस्तुतः अराजकवाद इस विषय में मार्क्सवाद से सर्वथा भिन्न है। मार्क्सवादियों की दृष्टि में व्यक्ति का कोई महत्व नही। मार्क्सवादी उसके साथ शतरंज के मुहरे की भांति व्यवहार करते है और सिद्धांत-संबंधी मतभेद होने पर उसके शरीर तथा आत्मा को अलग-अलग कर देने मे भी उन्हें कोई संकोच नहीं होता! पर अराजकवादी के लिए मनुष्य वस्तुतः मनुष्य है, जिसके लिए मानों उसका हृदय उमड़ा पड़ता है। साम्यवादी को अपनी 'प्रणाली' की चिंता है, जबकि अराजकवादी को 'मनुष्य' की। जब भी कभी अन्याय तथा अत्याचार का प्रश्न आता, क्रोपॉटकिन बिना किसी भेदभाव के उसका विरोध करते—चाहे वह अन्याय उनके विरोधी पंथवाले पर ही क्यों न किया गया हो। उनके शब्द सुन लीजिए—"हम व्यक्ति की पूर्ण स्वाधीनता को मानते हैं। हम उसके लिए जीवन की प्रचुरता तथा उसकी समस्त प्रतिभाओं का स्वतंत्र विकास चाहते हैं। हम उसके ऊपर लादना कुछ भी नहीं चाहते। इस प्रकार हम उस सिद्धांत पर पहुंचते है, जिस सिद्धांत को प्योरिये ने धार्मिक नीति-ज्ञान के विरोध में रखते हुए कहा था—'मनुष्य को बिल्कुल स्वतंत्र छोड़ दो। उसे अंगहीन मत बनाओ, क्योंकि धर्म पहले से ही उसको अपंग—जरूरत से ज्यादा अपंग—बना चुका है।' उसके मनोविकारों से भी मत डरो। स्वतंत्र समाज में ये ख़तरनाक नहीं होते।"

प्रिंस क्रोपॉटकिन के ग्रंथों को पढ़ जाइए, कहीं भी कोई क्षुद्र भावना उनमें दिखाई न देगी। कम्युनिस्ट साहित्य के शाब्दिक जंजाल का उनमें नामोनिशान तक नहीं है। कम्युनिस्ट रुपये-पैसे को इतना महत्व देते है और नैतिकता को इतना नगण्य मानत है कि उनके साहित्य की लूट-लपट में किसी

भी सहृदय मनुष्य की आत्मा झुलस सकती है। क्रोपॉटकिन का साहित्य इसके बिल्कुल विपरीत है। उसमें नैतिकता की शीतल मंद समीर सदा ही बहती रहती है।

क्रोपॉटकिन के ४१ वर्षीय देश-निकाले के कितने ही किस्से उनके जीवन-चरित में तथा उनके विषय में लिखे संस्मरणों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, जिनसे उनकी संत प्रकृति पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है। एक बार फ्रैंक हैरिस ने उनसे कहा—"आपने देखा, उन अराजकवादियों ने यौवनावस्था में तो खूब काम किया, पर अब वे अर्थ-लोलुपता के शिकार होगए है।" इसपर क्रोपॉटकिन ने उत्तर दिया—"उन लोगों ने जोशे-जवानी के दिन हमारे अर्पित कर दिए और अपना सर्वोत्तम हमे भेंट कर दिया। अब इससे अधिक की मांग उनसे हम कर ही क्या सकते है ?" यह उदारता ही क्रोपॉट-किन के संपूर्ण जीवन की कुंजी थी।

विलायत मे रहते हुए क्रोपॉटकिन की मैत्री वहां के सर्वश्रेष्ठ विचारकों तथा कार्यकर्ताओं से होगई थी। उनमे से कितने ही उनके प्रशंसक थे। हिंडमैन, बरनार्ड शा, लैंसबरी, एडवर्ड कारपेंटर, नैविनसन और ब्रेल्स-फोर्ड प्रभति से उनके संबंध बहुत निकट के थे। जब क्रोपॉटकिन ७० वर्ष के हुए तो उनके अभिनंदन के लिए आयोजित एक सभा में बरनार्ड शा ने कहा था—"मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इतने वर्ष तक हम लोग ग़लत रास्ते पर चलते रहे है, और क्रोपॉटकिन का रास्ता ही ठीक था।" तपस्वियों तथा विचारकों की विचारधारा बहुत धीरे-धीरे काम करती है। क्रोपॉटकिन ने अपनी वाणी तथा लेखनी द्वारा जो महान कार्य किया, उसने केवल इंग्लैंड ही नही, फ्रांस, इटली, स्विटज़रलैंड तथा यूरोप के अन्य देशों के विचारकों को भी प्रभावित किया और जो विचार उन दिनों नवीन प्रतीत होते थे, वे आज सार्वजनिक बन गए है।

सन् १९१७ की रूसी क्रांति के बाद क्रोपॉटकिन ने स्वदेश लौटना उचित समझा। तब वह ७५ वर्ष के हो चुके थे, फिर भी उनके मन में युवकों-जैसा उत्साह था। पेट्रोग्रेड में ६० हजार आदमियों ने उनका स्वागत किया

और रूसी सरकार के प्रधान केरेंस्की भी उनके स्वागतार्थ उपस्थित थे। चूंकि क्रोपॉटकिन का विश्वास किसी भी सरकार में नहीं था, इसलिए उन्होंने कोई सरकारी पद ग्रहण नहीं किया। वैसे केरेंस्की के साथ उनके संबंध अच्छे थे, पर लेनिन के हाथ में शक्ति पहुंचने पर क्रोपॉटकिन सर्वथा उपेक्षा के ही पात्र बन गये !

क्रोपॉटकिन के अंतिम दिनों की एक झांकी एमा गोल्डमैन के आत्म-चरित 'लिविंग माइ लाइफ' में मिलती है। उन्होंने लिखा है—"रूस पहुंचने पर मुझे कम्युनिस्टों ने बार-बार विश्वास दिलाया था कि क्रोपॉटकिन तो बड़े आराम की ज़िंदगी बसर कर रहे हैं और उन्हें न भोजन-वस्त्र की कमी है, न किसी अन्य वस्तु की। पर जब मैं क्रोपॉटकिन के घर पहुंची तो मामला इसके विपरीत ही पाया ! क्रोपॉटकिन, उनकी पत्नी सोफी तथा लड़की एलैक्जेंडरा, तीनों एक कमरे मे रहते थे और वह कमरा भी काफी गरम नहीं था तथा पास के कमरे इतने ठंडे थे कि उनका तापमान शून्य से भी नीचे था ! उन्हें जो भोजन मिलता था वह बस जीवित रहनेभर के लिए पर्याप्त था। जिस सहकारी समिति से उन्हें राशन मिलता था, वह टूट चुकी थी और उसके मेम्बर जेल भेज दिये गए थे। मैंने सोफी से पूछा—'गुज़र-बसर कैसे होती है ?' उन्होंने उत्तर दिया—'हमारे पास एक गाय है और बगीचे में भी कुछ पैदा हो जाता है। साथी लोग बाहर से कुछ भेज देते हैं। अगर पीटर (क्रोपॉटकिन) बीमार न होते और उन्हें अधिक पौष्टिक भोजन की जरूरत न होती तो हम लोगों का काम चल जाता।"

जार्ज लैंसबरी इन्हीं दिनों रूस गए हुए थे। उन्होंने एमा गोल्डमैन से कहा था—"मुझे तो यह बात असंभव दीखती है कि सोवियत सरकार के उच्च पदाधिकारी क्रोपॉटकिन-जैसे महान् वैज्ञानिक को इस प्रकार भूखों मरने देंगे ! हम लोग इंग्लैंड में तो इस प्रकार के अनाचार को असह्य समझेंगे।"

क्रोपॉटकिन उन दिनों अपनी अंतिम पुस्तक 'नीतिशास्त्र' लिख रहे थे। किताबों के खरीदने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे। क्लार्क या टाइपिस्ट

रखने की तो वह कल्पना भी नही कर सकते थे; इसलिए अपने ग्रंथ की पाण्डुलिपि उन्हें खुद ही तैयार करनी पड़ती थी। भोजन भी उन्हें पुष्टिकर नहीं मिल पाता था, जिससे उनकी कमजोरी बढ़ती जाती थी और एक धुंधले दीपक की रोशनी में उन्हें अपने ग्रंथ की रचना करनी पड़ती थी !

जब क्रोपॉटकिन मरणासन्न हुए तो अवश्य लेनिन ने मास्को से सर्वश्रेष्ठ डाक्टर और भोजन इत्यादि की सामग्री भेजी थी और यह आदेश भी दे दिया था कि क्रोपॉटकिन के स्वास्थ्य के समाचार उनके पास बराबर भेजे जायं ! जीवन के अंतिम दिनों में जिसे दमघोंटू वातावरण में रहने के लिए मजबूर किया गया, उसकी मृत्यु के समय इतनी चिंता का अर्थ ही क्या हो सकता था ? ८ फरवरी, १९२१ को क्रोपॉटकिन का देहांत होगया। लेनिन की सरकार ने सरकारी तौर पर उनकी अंत्येष्टि करने का विचार प्रकट किया, जिसे उनकी पत्नी तथा साथी-संगियों ने तुरंत अस्वीकार कर दिया। अराजकवादियों के मजदूर-संघ के भवन से उनके शव का जुलूस निकला, जिसमें २० हजार मजदूर थे। सर्दी इतने जोरों की थी कि बाजे तक बर्फ के कारण जम गए! लोग काले झंडे लिये हुए थे और चिल्ला रहे थे— "क्रोपॉटकिन के संगी-साथियों को, अराजकवादी बंधुओं, को जेल से छोड़ो !"

सोवियत सरकार ने डिमिट्रोव का छोटा-सा घर क्रोपॉटकिन की विधवा पत्नी को रहने के लिए और उनका मास्कोवाला मकान क्रोपॉटकिन के मित्रों तथा भक्तों को दे दिया, जहां उनके कागज-पत्र, चिट्ठियां तथा अन्य वस्तुएं सुरक्षित रहीं। सोफी १९३० तक जीवित रहीं और क्रोपाटकिन के नाम पर स्थापित म्यूजियम की रक्षा करती रहीं। इसके बाद वह संग्रहालय भी छिन्न-भिन्न कर दिया गया ! पर स्वाधीनता का यह अद्वितीय पुजारी युग-युगांतर तक अमर रहेगा। उसका व्यक्तित्व हिमालय के सदृश महान और आदर्शवादिता गौरीशंकर शिखर की तरह उच्च है।

: २ :

संस्मरण

क्रोपॉटकिन का जन्म मास्को नगर में सन् १८४२ में हुआ था। उनके दो बड़े भाई थे, निकोलस और एलेकज़ेंडर और एक बड़ी बहन थी, जिसका नाम था हैलीना। जब क्रोपॉटकिन केवल साढ़े तीन वर्ष के थे, उनकी माता का देहांत होगया। माता की मृत्यु का ज़िक्र करते हुए उन्होंने लिखा ह :

माता की मृत्यु

"मुझे उस समय की कुछ थोड़ी-सी याद है, जब मैं और मेरा भाई उस कमरे में, जहां मेरी माता मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई थीं, बुलाये गए थे। एक बड़ा-सा शयनागार था। खाट पर सफेद बिस्तरा बिछा हुआ था। मेरी मां उसपर लेटी हुई थीं। बच्चों के लिए छोटी-छोटी कुर्सियां पड़ी हुई थीं। नजदीक ही मेजें बिछी थीं। सुंदर कांच के बर्तनों में सफाई के साथ मिठाइयां और मुरब्बे रखे हुए थे। यह दृश्य कुछ धुधले रूप में अब भी मेरी आंखों के सामने है। मरते समय हमारी माता ने मुझे और मेरे भाई को अंतिम बार अपनी आंखों के सामने खिलाने के लिए यह मिठाई रखवाई थी। माता को तपेदिक होगई थी। उसकी उमर कुल ३५ वर्ष की थी। उसकी इच्छा थी कि हमेशा के लिए हमसे विदा होने के पहले वह हमें एक बार पुचकार ले और हमें प्रसन्न देखकर स्वयं प्रसन्न हो ले। मुझे उसके पीले और पतले चेहरे की याद है। उसके नेत्र बड़े-बड़े और गहरे भूरे रंग के थे। बड़े प्रेम के साथ उसने हमारी ओर देखा, हमसे खाने के लिए कहा और फिर बोली—'आओ बेटा, मेरी खाट पर बैठ जाओ।' इसके बाद

उसकी आंखों में आंसू भर आए। उसे खांसी आगई, और हम लोगों को वहां से चले जाने के लिए कहा गया।

"फिर हम लोग उस बड़े मकान से एक छोटे कमरे में ले जाये गए। हमारी जर्मन धाय मैडम बर्मन और रशियन धाय उलियाना ने हमसे कहा—'बच्चो, तुम अब सो जाओ।' उनकी आंखों में आंसू भरे हुए थे, और वे हमारे लिए काली कमीजें सी रही थीं। हमें नींद नहीं आई, किसी अज्ञात चीज़ से हम डरे हुए थे और अपनी मां के बारे में उन दोनों धायों की कानाफूसी को सुन रहे थे, पर हमारी समझ में कुछ नहीं आता था। अपनी खाट पर से हम कूद पड़े और कहने लगे, 'अम्मा कहां है?' 'अम्मा कहां हैं?' दोनों धायें रोने लगीं, और हमारे घुंघराले बालों पर थपकी देकर कहने लगीं—'बेचारे अनाथ होगए!' फिर रशियन धाय बोली—'तुम्हारी अम्मा वहां आकाश में चली गई, वहां देव-दूतों के पास।'

'अम्मां आकाश में कैसे चली गई? क्यों चली गई?'

"हमारे बाल्यावस्था के कल्पनाशील दिमाग के इन प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न मिला।"

प्रिंस क्रोपॉटकिन की माता बड़े प्रेमपूर्ण स्वभाव की थीं। नौकरों और गुलामों पर उनकी बड़ी कृपादृष्टि रहती थी और वे लोग भी उन्हें बड़े प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनके मरने के बाद ये दास लोग क्रोपॉटकिन से कहा करते थे—"बड़े होने पर क्या तुम भी अपनी माता की तरह हमपर कृपालु होगे? उनकी हम दासों पर बड़ी दया थी।" क्रोपॉटकिन ने आगे चलकर दीन-हीन मनुष्यों के लिए जिस असाधारण त्याग का परिचय दिया, उसके मूल में उनकी माता का प्रेममय स्वभाव ही था।

पिताजी

प्रिंस क्रोपॉटकिन ने अपने पिताजी का एक सजीव चित्र खींचा है। वह पुराने ढंग के सैनिकता-प्रिय आदमी थे। अपने उच्च वंश का उन्हें बहुत काफी अभिमान था। सैनिक रंग-ढंग उन्हें बहुत प्रिय थे। वह जनरल कहलाते

भी थे, पर युद्ध-क्षेत्र में शायद ही कभी गए हों ! सारा रूसी शासन उन दिनों इसी तरह के आडंबरयुक्त सैनिकों से भरा हुआ था। यदि सैनिकों का कोई गुलाम—गुलामी की प्रथा उन दिनों रूस में काफी प्रचलित थी—बहादुरी का काम करता था तो उसका पुरस्कार उसके स्वामी को मिलता था ! क्रोपॉटकिन लिखते हैं—

"हमारे पिताजी ने सन् १८२८ के रूस-टर्की युद्ध में भाग लिया था, लेकिन जोड़-तोड़ लगाकर आप बराबर चीफ कमांडर के आफिस में ही बने रहे। जब हम लोग कभी उन्हें बहुत खुश देखते तो मौका पाकर उनसे प्रार्थना करते कि आप हमें युद्ध का कुछ हाल सुनाओ; पर वह केवल एक बात बतलाया करते थे कि किस तरह रात के वक्त एक बार सैकड़ों तुर्की कुत्तों ने उनपर तथा उनके स्वामिभक्त नौकर फ्रोल पर आक्रमण किया था। तलवार चलाकर ही वह इन भूखे जानवरों से बच सके। यदि वे तुर्क लोगों के आक्रमण की बात कहते तो हम बच्चों के मन को कुछ संतोष भी होता। जब हम जिद करके पूछते कि आपको वीरता के लिए 'सैण्ट एनी' का पदक कैसे मिला तो वह इसका जो उत्तर देते थे, उससे सचमुच बड़ी निराशा होती थी। बात यह हुई थी कि जिस ग्राम में सेनापति और उनके साथी ठहरे हुए थे, उसमें आग लग गई। किसी घर में एक बच्चा पड़ा रह गया और उसकी मां बेचारी करुणोत्पादक ढंग से रो रही थी। फ्रोल आग की लपटों में से घुसकर उस बच्चे को निकाल लाया। चीफ कमांडर ने इस दृश्य को अपनी आंखों से देखा और तुरंत पिताजी को वीरता का पदक प्रदान किया !

"हम लोग पूछते—'पिताजी, बच्चे को तो फ्रोल ने बचाया था !' पिताजी बड़ी दृढ़ता से जवाब देते—'सो इससे क्या ! फ्रोल नौकर किसका था ? यह सब एक ही बात है।"

ज़ार के पार्षद

जब प्रिंस क्रोपॉटकिन की उमर आठ वर्ष की थी, उनके जीवन में एक उल्लेख-योग्य घटना हुई। जार की राज्यारोहण की रजत-जयंती थी और

उसके लिए मास्को में बड़ी धूम-धाम के साथ उत्सव मनाया गया था। ज़ार तथा उनके कुटुंबी मास्को पधारनेवाले थे। उसीके उपलक्ष में एक बाल-नाच हुआ था। क्रोपॉटकिन अपनी माता के साथ उसमें गए थे। उन्हें फारिस के राजकुमारों के-से वस्त्र पहना दिये गए थे। जार को बालक क्रोपॉटकिन का भोला-भाला चेहरा बड़ा पसंद आया और उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि उस बच्चे को मेरे पास ले आओ। ज़ार के नौकर क्रोपॉटकिन को लाने के लिए दौड़े। क्रोपॉटकिन वहां ले जाये गए। ज़ार को भद्दे मज़ाक करने का बड़ा शौक था। वह क्रोपॉटकिन का हाथ पकड़कर अपनी पुत्र-वधू मेरी एलेक्जेंड्रोवना के पास, जो उन दिनों गर्भवती थीं, ले गए और बोले—"मुझे ऐसा बच्चा जन कर देना।" वह बेचारी इस मजाक से लज्जित हो गई। ज़ार के भाई माइकेल ने बालक क्रोपॉटकिन को रुला दिया। उसने क्रोपॉटकिन के मुंह पर ऊपर से नीचे हाथ फेरते हुए कहा—"देखो बच्चे, जब तुम अच्छे बालक होते हो, तब सब तुम्हारे साथ ऐसा बर्ताव करते हैं।" और फिर नीचे से ऊपर की ओर हाथ फेरते हुए क्रोपॉटकिन की नाक को रगड़ते हुए कहा—"जब तुम बुरे लड़के होते हो, तब सब तुम्हारे साथ यों बर्त्ताव करते हैं।" बहुत कोशिश करने पर भी बालक क्रोपॉटकिन अपने आंसू न रोक सका। जो महिलाएं वहां उपस्थित थी उन्होंने क्रोपॉटकिन की तरफ ली, उसे पुचकारने लगीं, और ज़ार की पुत्र-वधू मेरी एलेक्जेंड्रोवना ने उसे अपनी गोदी में ले लिया। क्रोपॉटकिन उसकी गोद में ही सो गए। बाल-नाच में वह शामिल न हुई और वह बालक को गोद में लिए बैठी रही।

इसके बाद ज़ार ने प्रसन्न होकर क्रोपॉटकिन को अपना पार्षद बना दिया। जार का पार्षद होना उन दिनों अत्यंत गौरव की बात समझी जाती थी और यह गौरव बिरले ही आदमियों को प्राप्त होता था।

दासों की दुर्दशा

क्रोपॉटकिन ने अपने जीवन-चरित में रूस के दासों की दुर्दशा का अत्यंत हृदय-द्रावक चित्र खींचा है। उनके साथ जानवरों से भी बुरा बर्त्ताव किया

जाता था। छोटे-छोटे अपराधों के लिए उनपर कोड़े लगवाए जाते थे। उनके शादी-ब्याह, बिना उनकी अनुमति के, चाहे जिसके साथ कर दिये जाते थे। बेचारे रोते थे, मना करते थे, विनती करते थे, गिड़गिड़ाते थे, पर सब व्यर्थ। जमींदार लोग यह समझते ही नहीं थे कि उन बेचारों के भी आत्मा है। क्रोपॉटकिन लिखते हैं—

"किसीको इस बात की आशंका भी न होती थी कि बेचारे दासों के हृदय में भी मानुषिक भाव हैं। जब तुर्गनेव ने अपनी गल्प 'मूमू' प्रकाशित की, और ग्रिगोरोविच ने अपने उपन्यासों में दासों की दुर्दशा का वर्णन करके रूसी पाठकों को रुलाया था, उस समय कितने ही रूसी लोग आश्चर्य से पूछते थे कि क्या सचमुच इन दासों के हृदय में भी हमारे तरह के भाव पाये जाते हैं? बड़े-बड़े घराने की जो रूसी स्त्रियां अपनी भावुकता के कारण फ्रांसीसी भाषा के उपन्यासों के नायक-नायिकाओं के वृत्तांतों को पढ़कर आंसू बहाए बिना न रहती थीं, कहती थीं—'अरे, क्या यह रशियन दास हमारी-तुम्हारी तरह ही प्रेम करते हैं? क्या यह बात संभव है?"...

मिलिटरी स्कूल में

क्रोपॉटकिन ने अपने स्कूली जीवन का जो विवरण लिखा है, वह भी बड़ा चित्ताकर्षक है। सीधे-सादे शिक्षकों को विद्यार्थी किस तरह तंग किया करते हैं, इसका बड़ा मनोरंजक वृत्तांत है। वह लिखते हैं—"एक जर्मन यहूदी मि. एबर्ट थे, वह विद्यार्थियों को लिखना सिखाया करते थे। लड़के उन्हें इतना अधिक तंग किया करते थे कि अगर उनकी निर्धनता उन्हें वहां रहने के लिए बाध्य न करती तो वह कभी के स्कूल छोड़कर चले गए होते। बड़े दर्जों के लड़के उन्हें खास तौर पर तंग करते थे, पर उन्होंने एक समझौता कर लिया था—'एक दिन में सिर्फ एक ही मजाक होना चाहिए, इससे ज्यादा नहीं।' समझौते की इस शर्त का प्रायः लड़कों की ओर से उल्लंघन किया जाता था। एक दिन पिछली बेंच पर बैठनेवाले एक लड़के ने खड़िया और स्याही में भिगोकर एक स्पंज इन शिक्षक महोदय को निशाना बनाकर मारा।

वह उनके कंधे पर लगा और स्याही के छींटे छिटककर उनके मुंह और सफेद कमीज पर फैल गए। हम लोगों को यह उम्मीद थी कि एबर्ट महोदय अपने क्लास को छोड़कर तुरंत ही इंस्पैक्टर से इस बात की शिकायत करेंगे, पर उन्होंने ऐसा नही किया। अपना रूमाल जेब से निकालकर उन्होंने अपना चेहरा पोंछा और कहा—'भाई, एक मजाक हर रोज का नियम है, सो हो चुका, इससे ज़्यादा न होना चाहिए।'

"फिर दबी जबान से यह कहते हुए कि हमारी कमीज खराब होगई, वह किसी लड़के की नोटबुक शुद्ध करते रहे। हम सबको बहुत शर्मिंदा होना पड़ा। उनकी सहनशीलता से लड़कों के विचार उनके पक्ष में होगए। हम लोगों ने उस साथी को फटकारते हुए कहा—'मूर्ख ! यह तुमने क्या किया ?' किसी लड़के ने कहा—"तुम्हें शर्म आनी चाहिए, वह बेचारे गरीब आदमी हैं और तुमने उनकी कमीज खराब कर दी।" अपराधी लड़का शिक्षक के पास माफी मांगने गया। एबर्ट ने खेदयुक्त स्वर में केवल इतना कहा—"भई, सबको सीखना चाहिए, सीखना।" क्लास में सर्वत्र शांति छा गई। दूसरे सबक के दिन हम सबने बहुत ही बढ़िया ढंग से लिखा और एबर्ट साहब के पास अपनी नोटबुक ले गये। यह देखकर उनका चेहरा खिल गया और दिनभर बड़े खुश रहे। उनकी यह सहनशीलता मेरे हृदय पर अंकित होगई और मैं उसे आजतक नहीं भुला सका। उन्होंने जो सबक मुझे सिखाया, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं।"

हस्तलिखित क्रांतिकारी पत्र का संपादन

सन् १८५९ या १८६० में क्रोपॉटकिन ने स्कूल में ही एक हस्तलिखित क्रांतिकारी पत्र निकालना शुरू कर दिया था। प्रथम अंक की आपने तीन प्रतियां कीं और अपने से ऊंचे दर्जे के विद्यार्थियों की डेस्क में रख दीं और साथ ही यह भी लिख दिया कि इस पत्र के विषय में अपनी सम्मति एक कागज पर लिख-कर हमारे स्कूल की घड़ी के पीछे रख आना। दो लड़कों ने उन्हें पढ़ा, और अपनी सम्मति लिखकर रख आए। दूसरे दिन क्रोपॉटकिन बड़ी उत्कंठा के

साथ वहां गए, तो उन सम्मतियों को रखा पाया। उसमें लिखा था—"हम लोग आपकी बातों से पूर्णतया सहमत हैं, पर आप ज्यादा खतरे मे न पड़ें।" बहुत उत्साहित होकर आपने अपने पत्र का द्वितीय अंक निकाला और फिर उसी तरह उन विद्यार्थियों की डेस्क में उनकी प्रतियां रख दीं। इस अंक में बड़े जोरों के साथ स्वाधीनता का पक्ष-समर्थन किया गया था और इस बात की प्रेरणा की गई थी कि सबको मिलकर देश को स्वाधीन करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस बार उन विद्यार्थियों ने अपनी सम्मति लिखकर घड़ी के पीछे नहीं रखी, बल्कि वे खुद ही क्रोपॉटकिन के पास आए और बोले—"हमें यह दृढ़ विश्वास है कि तुम्हीं इस पत्र का संपादन करते हो। हम लोग आपसे इस विषय में बातचीत करना चाहते हैं। हम आपसे बिल्कुल सहमत हैं और हम आपसे यह कहने आए हैं कि हम और आप मित्र हैं। अब आपको अपने पत्र के निकालने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि स्कूलभर में हम लोगों के विचारों के केवल दो लड़के और हैं। यदि भेद खुल गया तो हम सबकी आफत आ जायगी। हम लोगों को चाहिए कि एक गुट बना लें और यथावकाश इन विषयों पर बातचीत किया करें।" क्रोपॉटकिन ने उन दोनों विद्यार्थियों से हाथ मिलाया और एक मित्र-मंडली स्थापित होगई। ये तीनों मित्र आपस में प्रायः देश की स्थिति पर बातचीत किया करते थे।

क्रोपॉटकिन के दिमाग पर तत्कालीन रूसी साहित्य-सेवियों की रचनाओं का बड़ा प्रभाव पड़ा था। उन दिनों तुर्गनेव, टॉल्सटाय, हर्जिन, बाकूनिन, डोस्टोवस्की इत्यादि के ग्रंथ प्रकाशित हो रहे थे, और वास्तव में सन् १८५७ और १८६१ के बीच का समय रूसी साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। रूस में उन दिनों राजनैतिक विषयों पर तो कोई पुस्तक खुल्लम-खुल्ला लिखी नहीं जा सकती थी, इसलिए लोग लुक-छिपकर उपन्यासों और प्रहसनों के रूप में राजनैतिक विचारों का प्रचार किया करते थे। ऊपर से तो यह साहित्य बिल्कुल मामूली-सा जंचता था, पर था वह वास्तव में क्रांतिकारी और उसकी लहरें उन एकांत स्थानों तक भी, जहां उनके जाने की कुछ भी गुंजाइश नहीं थी, पहुंच जाती थीं। कहां क्रोपॉटकिन का

घोर राजभक्त मिलिटरी कालेज और कहां इस प्रकार का साहित्य ! पर क्रांतिकारी विचारों की लहरों को कोई दीवार नही रोक सकती और वह सभी विघ्न-बाधाओं को पार करती हुई स्वाधीनता-प्रिय पुरुषों के हृदय तक पहुंच ही जाती है, क्योंकि वे हृदय से निकली हुई होती है।

नियुक्ति

जब क्रोपॉटकिन अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके, तो उनकी नियुक्ति का समय आया। इन लोगों को, जो फौज में जाकर अफसर बनते थे, यह अधिकार था कि वे अपनी-अपनी इच्छानुसार अपनी रेजीमेंट चुन लेते थे। कोई तोपखाने में जाता था तो कोई कज्जाक सेना में सम्मिलित होता था। क्रोपॉटकिन की इच्छा सैनिक बनने की बिल्कुल नही थी। वह कालेज में अध्ययन करना चाहते थे, पर उनके पिता इसके सर्वथा विरुद्ध थे, इसलिए वह लाचार थे। क्रोपॉटकिन के अन्य साथियों ने भिन्न-भिन्न रेजीमेंटों में अफसर बनने का विचार किया, पर क्रोपॉटकिन ने साइबेरिया की कज्जाक-सेना मे अफसर बनने का निश्चय किया। इस बात को सुनकर क्रोपॉटकिन के साथी दंग रह गए। कोई-कोई कहने लगे—"साइबेरिया ! अरे भाई, मज़ाक तो नही कर रहे ! सचमुच तुम बड़े दिल्लगीबाज़ हो ! भला उस मनहूस मुल्क में जाकर क्या करोगे?" पर क्रोपॉटकिन ने मजाक नही किया था। उन्होंने भूगोल का अत्यंत परिश्रम के साथ अध्ययन किया था, और उनकी इच्छा थी कि साइबेरिया पहुंचकर आमूर नदी के विषय में कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान करें। इसके साथ ही उन्हें इस बात की आशा थी कि साइबेरिया पहुंचकर वह उन राजनैतिक सुधारों को, जो शीघ्र ही होनेवाले थे, कार्य रूप में परिणत करने का अवसर प्राप्त करेंगे। साइबेरिया जाना कोई पसंद नही करता था, और इसलिए क्रोपॉटकिन ने सोचा कि वहां इच्छानुसार कार्य करने के लिए विस्तृत क्षेत्र मिलेगा।

ज़ार से बातचीत

तमाम युवक अफसर अपने-अपने स्थानों को जाने से पहले ज़ार से मिलने

के लिए गए। क्रोपॉटकिन को भी जाना पड़ा। आमूर के कज्ज़ाकों की रेजीमेंट उमर मे बहुत छोटी होने के कारण क्रोपॉटकिन को अफसरों की पंक्ति में सबसे नीचे खड़ा होना पड़ा। ज़ार ने क्रोपॉटकिन को देखा और कहा—"आखिर तुमने साइबेरिया जाना तय कर ही लिया! क्या तुम्हारे पिताजी राजी हो गए?" क्रोपॉटकिन ने कहा—"जीहां, उन्होंने अनुमति दे दी।" फिर ज़ार ने पूछा—"क्या तुमको इतनी दूर जाने में डर नहीं लगता?" क्रोपॉटकिन ने बड़े उत्साहपूर्वक उत्तर दिया—"नहीं, मैं तो काम करना चाहता हूं। नए सुधारों के बाद साइबेरिया में बहुत-कुछ काम करने को मिलेगा।" ज़ार ने सीधे क्रोपॉटकिन की ओर देखा, कुछ चिंता की झलक उसके चेहरे पर प्रकट हुई, और फिर वह बोला—"अच्छा, जाओ, आदमी हर जगह उपयोगी सिद्ध हो सकता है।" इसके बाद ज़ार के चेहरे पर बड़ी थकावट के-से चिह्न प्रतीत हुए। क्रोपॉटकिन लिखते हैं—"मै उसी समय समझ गया कि यह आदमी तो बीत चुका, इससे सुधार इत्यादि कुछ नहीं होने के। यह तो फिर अत्याचारपूर्ण नीति का प्रयोग किए बिना न रहेगा।" हुआ भी ऐसा ही, जेलखाने देशभक्तों से भरे जाने लगे और चारों ओर ज़ारशाही का आतंक छा गया।

साइबेरिया में

साइबेरिया में क्रोपॉटकिन को पांच वर्ष तक रहना पड़ा। यहां उन्हें अनेक अनुभव हुए। क्रोपॉटकिन को अभी यह विश्वास था कि ज़ार की सरकार सुधारों के लिए सचमुच उत्सुक है और उन्होंने अत्यंत परिश्रम के साथ साइबेरिया में देश-निकाले की प्रथा के सुधार और म्यूनिसिपल सुधार के लिए अपनी योजनाएं तैयार कीं, परंतु ये योजनाएं कागजों में लिखी हुई जहां-की-तहां पड़ी रहीं और उनका कोई उपयोग नहीं हुआ! ज़ारशाही के शासन का एक दृष्टांत सुन लीजिए। साइबेरिया के किसी जिले में एक अत्यंत धूर्त अफसर था। यह किसानों को खूब लूटा करता था और डटकर रिश्वत लिया करता था। वह उनके कोड़े भी लगवाया करता था, यहांतक कि स्त्रियां भी उसके अत्याचार से नहीं बची थीं। उनके भी कोड़े लगते थे। इस अफसर की

धूर्त्तताओं की खबर प्रांत के गवर्नर के कानों तक पहुंच चुकी थी, पर वे कुछ भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि सैंटपीटर्सबर्ग में इस अफसर के मित्रों अथवा संबंधियों का ज़ोर था, और इसलिए वह निश्चिंत होकर मन-मानी किया करता था। प्रांत के गवर्नर जब उसकी शिकायतें सुनते-सुनते तंग आगए, तो उन्होंने क्रोपॉटकिन को इस बात के लिए नियुक्त किया कि वह इस अफसर की कार्रवाइयों की जांच करें। यह काम आँसान नहीं था, क्योंकि कोई भी किसान उस दुष्ट अफसर के खिलाफ गवाही देने को तैयार नहीं था। रूसी भाषा में एक कहावत है—'परमात्मा तो बहुत दूर रहता है, पर तुम्हारा अफसर तुम्हारे निकट का पड़ोसी है', इसी डर से वे लोग अपने जिले के अफसर के विरुद्ध साक्षी नहीं दे सकते थे, यहांतक कि वह औरत भी जिसके कोड़े लगवाये गये थे, अपना लिखित बयान देने को तैयार नहीं थी। जब पंद्रह दिन रहकर क्रोपॉटकिन वहां के निवासियों के विश्वासपात्र बन गए, तब कहीं उन्होंने अपनी दुख-गाथा सुनाई। इस अफसर के विरुद्ध इतने प्रबल प्रमाण मिले कि वह आखिरकार बर्खास्त कर दिया गया, पर कुछ महीने बाद क्या हुआ कि वही अफसर किसी दूसरे प्रांत में उच्चतर पद पर भेज दिया गया! वहां भी उसने लूट-मार जारी रखी। दो-चार वर्ष बाद ही वह धनवान होकर सैंटपीटर्सबर्ग को लौट गया और वह फिर समाचार-पत्रों में देश-भक्ति पूर्ण लेख लिखने लगा।

फिर विद्यार्थी-जीवन

सैनिक जीवन क्रोपॉटकिन के स्वभाव के बिल्कुल प्रतिकूल था और सन् १८६७ में वह अपनी नौकरी से त्यागपत्र देकर सैंटपीटर्सबर्ग आगए। जो पांच वर्ष उन्हें साइबेरिया में बिताने पड़े, उनसे उन्हें बहुत-कुछ अनुभव होगया। उन्हें ज़ारशाही की सुधार-प्रवृत्ति का खोखलापन अच्छी तरह मालूम होगया, और देश-भक्तों के कष्टमय जीवन से भी वह भली-भांति परिचित हो गए। वहां रहते हुए उन्हें आमूर नदी के विषय में अनुसंधान भी करना पड़ा, इसलिए उन्हें अपने देश के उस भाग का भौगोलिक ज्ञान भी होगया। अब

विश्वविद्यालय में आकर क्रोपॉटकिन ने अपना सारा समय भूगोल के लिए लगाना प्रारंभ कर दिया। उत्तरी एशिया के जो मानचित्र उन दिनों छापे जाते थे, उनमें पहाड़ इत्यादि के निशान यू ही अंदाज़ से और ग़लत लगा दिये गए थे। क्रोपॉटकिन ने कई वर्ष तक परिश्रम करके इनका ठीक-ठीक पता लगाया। बड़े-बड़े भौगोलिक और वैज्ञानिक जिस समस्या को हल नहीं कर पाए थे, उसे क्रोपॉटकिन ने हल कर दिया। विज्ञान-संसार में उनकी कीर्ति फैल गई। वैज्ञानिक अनुसंधान करने के बाद वैज्ञानिक को जो आनंद होता है, उसका वर्णन करते हुए क्रोपॉटकिन ने लिखा है :

"जिस किसीने अपने जीवन में एक बार भी उस आनन्द का अनुभव किया है, जो वैज्ञानिक कृति के सफल होने के बाद आता है, वह उस आनन्द को कदापि भूल नही सकता, और वह बार-बार इसी बात की इच्छा करेगा कि वह आनंद मुझे जीवन में अनेक बार मिले। पर एक बात से उसे दुःख होगा, वह यह कि इस तरह का आनंद कितने अल्प-संख्यक आदमियों के भाग्य में बदा है। यदि साधारण जनता को अवकाश मिलता और विज्ञान की बाते उन्हें समझा दी जातीं तो थोड़े-बहुत अंश में वे भी इस आनंद का कुछ अनुभव कर लेते, पर दुर्भाग्यवश यह ज्ञान और अवकाश केवल मुट्ठी-भर आदमियों तक ही परिमित रहता है।"

जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन

अब क्रोपॉटकिन के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन का समय आता है। भौगोलिक अनुसंधान करने के लिए वह फिनलैंड भेजे गए थे। वहां जाकर उन्होंने उस देश के दीन-हीन किसानों की हालत देखी। उससे उनका हृदय द्रवित होगया और वह सोचने लगे—"ये बेचारे मेहनत करते-करते मरे जाते हैं, फिर भी इन्हें पेट-भर भोजन नहीं मिलता। अपने वैज्ञानिक अनसंधान करके मैं उन्हें यह बतलाऊं भी कि तुम अमुक जमीन में अमुक प्रकार का खाद दो और फलां कार्य के लिए फलां अमरीकन मशीन मंगाओ, तो उससे क्या फ़ायदा होगा ? सरकारी टैक्स बराबर बढ़ता जाता है, और टैक्स देने के बाद

पेट-पूर्त्ति के लिए भी काफी अन्न नहीं बचता। शरीर ढकने के लिए कपड़े भी उसके पास नहीं। भला वह मेरे वैज्ञानिक अनुसंधानों को और सलाहों को लेकर क्या चाटेगा ? इस किसान को मेरी वैज्ञानिक सलाह की जरूरत नही, उसे जरूरत है मेरी, यानी मैं उसके पास रहूं और अपनी ज़मीन का मालिक बनने में उसकी मदद करूं। जब उसको भरपेट खाना मिलेगा, तब वह मेरी किताब भी पढ़ लेगा और उससे कुछ लाभ भी उठा लेगा, अभी नही। विज्ञान बड़ी अच्छी चीज है। मैंने वैज्ञानिक अनुसंधानों के आनंद का अनुभव किया है और उसका मूल्य मैं भली-भांति जानता हूं, पर मुझे क्या अधिकार है कि मैं अकेले ही उन सर्वोच्च आनंदों का मज़ा लूटूं, जब मेरे चारों ओर एक-एक रोटी के टुकड़े के लिए भयंकर जीवन-संग्राम चल रहा है ? जो लोग गेहूं उगाकर भी इतना नही बचा सकते कि खुद उनके बच्चे गेहूं की रोटी खा सकें, तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं उनके मुह की रोटी के टुकड़े छीनकर स्वयं उच्च भावनाओं के संसार में विचरण करूं? मनुष्य-जाति जो कुछ उत्पन्न करती है, उसकी मिकदार अभी बहुत थोड़ी है, इसलिए यदि मैं मज़े में रहता हुआ वैज्ञानिक अनुसंधानों में मस्त रहूं, तो इसका खर्च भी तो किसी गरीब के मुंह की रोटी छीनकर ही आवेगा। ज्ञान बड़ी भारी चीज़ है, मैं भी यह मानता हूं। इससे इन्कार कौन करता है ? मनुष्य को ज्ञान बढ़ाना चाहिए। बहुत ठीक। पर सवाल तो यह है कि जितना ज्ञान प्राप्त होगया है, जितने वैज्ञानिक अनुसंधान हो चुके है, क्या वे सर्वसाधारण तक पहुंच गए ? क्या आम लोग उन्हें जान गए ? मेरी समझ में जितने ज्ञान का पता लग चुका है, वह बहुत काफी है। यदि यह ज्ञान सर्वसाधारण की संपत्ति बन जाय, तो फिर विज्ञान की कितनी ज़बर्दस्त उन्नति हो ? तब उत्पत्ति, आविष्कार और सामाजिक कार्यो की गति, इतनी तीव्र हो जायगी कि अभी हम उसका अंदाज भी नहीं लगा सकते। साधारण जनता ज्ञान प्राप्त करना चाहती है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि उसे ज्ञान मिले। उसमें ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य भी है, पर उसे ज्ञान देता कौन है? उसके पास इतना अवकाश कहां है ?"

क्रोपॉटकिन लिखते हैं—"मेरे विचार इसी दिशा में काम करने लगे। मैंने कहा, बस, मैं तो अब इसी तरह के दीन-हीन आदमियों के लिए काम करूंगा। जो आदमी वैज्ञानिक अनुसंधान करने और साधारण जनता का ज्ञान बढ़ाने तथा उसकी उन्नति करने का दम भरते हैं, वे खुद कभी साधारण जनता के पास भी नही फटकते ! कैसी विडंबना है ! उनके विचार और उनका वास्तविक जीवन, कितने परस्पर-विरोधी हैं ! जब मेरे मन में इस प्रकार के विचार चक्कर खा रहे थे, तभी रूसी भौगोलिक सोसायटी का तार आया, "क्या आप कृपा कर हमारी सोसायटी के सेक्रेटरी का पद स्वीकार करेंगे ?" मैंने जवाब दिया—"नहीं।"

रूस की तात्कालीन दशा

प्रिंस क्रोपॉटकिन ने रूस की उस समय की हालत का जो चित्र खींचा है, वह भारत की पराधीनता के दिनों की स्थिति से बिल्कुल मिलता-जुलता है। नवयुवकों को ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे उनमें विचार-शक्ति उत्पन्न ही न हो। जिन लड़कों में स्वतंत्र विचार-शक्ति की थोड़ी-सी मात्रा पाई जाती थी, वे निकाल बाहर किए जाते थे। लड़कों को औद्योगिक शिक्षा की जरूरत थी और विद्यालयों में लैटिन तथा ग्रीक भाषाएं पढ़ाई जाती थीं ! शिक्षा का विस्तार करने और उसे उपयोगी बनाने के बजाय उसे परिस्थिति के बिल्कुल विपरीत बनाकर निरर्थक कर दिया गया था। नवयुवकों के हृदय में निराशा घर कर रही थी। किसान भारी टैक्सों के बोझ से पिसे जाते थे। सुशिक्षित समाज की दशा बड़ी विचित्र थी। उनके जीवन में भोग-विलास ने घर कर लिया था और राजनैतिक मामलों के विषय में बातचीत करते हुए भी वे डरते थे ! साहित्यिक सभाओं के आदमी और भी दब्बू बन गए थे। जब कभी प्रिंस क्रोपॉटकिन या उनके बड़े भाई राजनैतिक चर्चा छेड़ते, तो इन संस्थाओं के सदस्य उनकी बात बीच में ही काटकर नाटक और रंगमंच की बातें करने लगते !

अधेड़ और अपनेको अनुभवी समझने आदमी नवयुवकों को उपदेश

देते थे—"हाथ-पांव बचाए और मूंजी को टरकाए" की नीति से काम लो। पत्थर की दीवार से सिर मारने से क्या फायदा है? धीरज धरो, यह वक्त भी निकल जायगा, इत्यादि।" पुलिस के अत्याचार बराबर बढ़ रहे थे। उन्नत विचारों के नवयुवक को यही खतरा रहता था कि वह कब पकड़ लिया जाय। किसी राजनैतिक अपराधी से सहानुभूति प्रकट करना भी एक भयंकर अपराध समझा जाता था। अगर किसीके यहां तलाशी में कोई मामूली चिट्ठी मिल गई, जिसका अंड-बंड कुछ दूसरा अर्थ भी निकलता हो, तो उसका जेल जाना निश्चित था। कितने ही नवयुवक इसलिए जेल भेज दिये जाते थे कि उनके विचार 'ख़तरनाक है।' 'राजनैतिक कारणों से' कितनी ही गिरफ्तारियां होती थी, और राजनैतिक कारण का अर्थ चाहे जो कुछ भी समझ लिया जाता था। सेंटपीटर्स और सेंटपाल के भयंकर जेलखानों में सैकड़ों नवयुवक सड़ रहे थे, कितनों ही को देश-निकाला देकर साइबेरिया भेज दिया गया था और कितनों ही को फांसी पर भी चढ़ा दिया गया था। कुछ वर्षों पहले जिनके राजनैतिक विचार उन्नत भी थे, वे भी अब पुलिस से इतने डर गए थे कि नवयुवकों से मिलते हुए भी उन्हें संकोच होता था। तुर्गनेव ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास 'पिता और पुत्र' में बड़ी खूबी के साथ यह दिखलाया है कि उस समय के पुराने विचारों के डरपोक पिताओं और नए जमाने के साहसी नवयुवकों के बीच में एक खाई-सी खुदी हुई थी, उनके विचारों में बड़ा अंतर था। पिताओं और पुत्रों के बीच में अंतर होने की बात तो रही अलग, पंद्रह-बीस वर्ष के नवयुवकों तथा तीस वर्ष से ऊपर-वालों के विचारों में बड़ा फर्क पड़ गया था। उस समय रूस के नवयुवक बड़ी विचित्र दशा में थे। पुराने खयाल के पिताओं से तो इन्हें झगड़ा करना ही पड़ता था, अपने से आठ-दस वर्ष अधिक उम्रवाले बड़े भाइयों से भी उनका प्रबल मतभेद था। नवयुवकों के विचार साम्यवाद की ओर झुक रहे थे और वे पैंतीस वर्षवाले आदमी उन युवकों का साथ राजनैतिक मामलों में भी देने से डरते थे। प्रिंस क्रोपॉटकिन लिखते हैं:

"मेरे मन में प्रश्न होता है कि क्या इतिहास में किसी देश के नवयुवकों

को इतने भारी शत्रु का मुकाबला ऐसी भयंकर स्थिति में करना पड़ा है ? इन नवयुवकों को इनके पिताओं और बड़े भाइयों तक ने त्याग दिया था। इन बेचारों का अपराध क्या था ? बस, यही कि उन्होंने अपने पिताओं और अंग्रेजों के विचारों को हृदयंगम करके उन्हें अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयत्न किया था। क्या इससे भी कठिन तथा दुःखजनक परिस्थिति में कहीं किसी देश के नवयुवकों को स्वाधीनता की लड़ाई लड़नी पड़ी है ?"

रूसी स्त्रियों में जागृति

जिन दिनों रूस के नवयुवकों के हृदय में क्रांतिकारी भाव उत्पन्न हो रहे थे, उन्हीं दिनों रूसी लड़कियां भी जागृत होकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आंदोलन कर रही थीं। प्रिंस क्रोपॉटकिन लिखते हैं :

"मेरी भाभी स्त्रियों के विद्यालय से लौटकर मुझे सुनाया करती थीं कि आज इस मामले पर युवतियों में बड़ी गरमागरम बहस हुई, कल इस विषय पर विचार होगा। कभी स्त्रियों के लिए विश्वविद्यालय खोलने की स्कीम सोची जाती थी, तो कभी उनके लिए उच्चकोटि की डाक्टरनी बनाने के उपायों पर विचार किया जाता था। स्त्रियों को कैसे शिक्षा दी जानी चाहिए, इस विषय पर वाद-विवाद हुआ करते थे और सैकड़ों स्त्रियां इन बहस-मुबाहसों में बड़ी गंभीरता और बड़े उत्साह के साथ भाग लिया करती थीं। गरीब लड़कियों की मदद के लिए इन स्त्रियों ने अनुवादक-मंडल, छापेखाने, जिल्द-बंदी इत्यादि काम खोल रखे थे। सैंटपीटर्सबर्ग में अनेक युवतियां इसी आशा से आकर इकट्ठी होती थीं कि उन्हें किसी प्रकार उच्च शिक्षा मिल जाय। गवर्नमेंट रूसी लड़कियों को विश्व-विद्यालय की शिक्षा देने की घोर विरोधी थी, इसलिए वे बेचारी अपना प्रबंध आप ही करती थीं। गवर्नमेंट कहती थी कि हाई स्कूल की परीक्षा पास लड़कियों में इतनी योग्यता नहीं होती कि वे विश्वविद्यालय की पढ़ाई को समझ सकें, इसपर लड़कियां कहतीं, "तो हमारे लिए प्रारंभिक कक्षाओं का प्रबंध कर दो, जहां पढ़कर हम विश्व-विद्यालयों

में दाखिल होने की तैयारी कर सकें; पर गवर्नमेंट इस बात पर राजी नहीं थी। प्राइवेट तौर पर बड़े-बड़े अध्यापकों के वे व्याख्यान कराती थीं। विश्वविद्यालय के कितने ही अध्यापक, जो उनके साथ सहानुभूति रखते थे, बिना एक पैसा लिये उन्हें पढ़ा दिया करते थे। वे कहते थे कि अगर तुमने पैसे देने की बात कही तो हम इसमें अपना अपमान समझेंगे। यद्यपि ये अध्यापक स्वयं गरीब थे, तथापि अपनी बहनों के अदम्य उत्साह को देखकर उनका हृदय द्रवित होगया था। भौतिक विज्ञान के अध्ययन के लिए यूनीवर्सिटी के अध्यापक विद्यार्थियों को साथ लेकर यात्राओं पर बाहर जाया करते थे। इन यात्रियों में अधिकांश स्त्रियां ही होती थीं। धायों के काम के लिए जो पाठ्यक्रम नियत किया गया था, उस पाठ्यक्रम से वे संतुष्ट नहीं थी और अध्यापकों पर जोर डालकर उन्होंने उस पाठ्यक्रम को और भी बढ़वा लिया। उनकी ज्ञान-पिपासा इतनी बढ़ी हुई थी कि वे जहां-कहीं और जब-कभी मौका मिलता, अपने समाज के लिए उच्च शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने की कोशिश करतीं। यदि उन्हें पता लग जाता कि अमुक अध्यापक महोदय इतवार के दिन अपनी प्रयोगशाला में लड़कियों को काम करने की इजाजत दे देंगे तो बस फिर क्या था, वे उसके पास दौड़ जातीं और इस अवसर से लाभ उठातीं। यद्यपि जार का मंत्रिमंडल स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने का घोर विरोधी था, तथापि उन लड़कियों के उत्साह का दमन करना उसके लिए भी आसान नहीं था। भला भावी माताओं को शिक्षा-पद्धति सीखने से कौन रोक सकता था? उन्होंने 'शिक्षण विद्यालय' खोल ही डाले। अब यह सवाल हुआ कि वनस्पति-शास्त्र तथा गणित की शिक्षा-पद्धति किस प्रकार सिखलाई जाय? इसके लिए कोरमकोर सिद्धांतों से तो काम चल नहीं सकता था। इसके लिए आवश्यकता थी, इन विषयों की व्यावहारिक शिक्षा की। एतदर्थ इन विद्यालयों में वनस्पति-शास्त्र तथा गणित की भी उच्चकोटि की शिक्षा का प्रबंध करना पड़ा। पाठ्यक्रम में शीघ्र ही इन विषयों को भी स्थान दिया गया। बस, विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के लिए एक रास्ता निकल आया। इस प्रकार धीरे-धीरे वे अपनी शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने लगीं।

क्रोपॉटकिन ने आगे चलकर लिखा है कि कितनी ही रूसी लड़कियां जर्मनी तथा स्विटजरलैंड में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगीं। उन्होंने कानून तथा इतिहास पढ़ने के लिए हीडलबर्ग के लिए प्रस्थान किया, गणित पढ़ने के लिए वे बर्लिन को चल पड़ीं और लगभग सौ लड़कियां ज्यूरिच में औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करती थीं। जार को यह बात बहुत नापसंद थी कि स्त्रियां उच्च शिक्षा प्राप्ति करें। जब कभी जार को कोई लड़की चश्मा पहने हुए दीख पड़ती, तो वह कांपने लगता था। उसके मन में यही आशंका होती थी कि कहीं यह लड़की क्रांतिकारी दल की न हो। सरकारी पुलिस उच्च शिक्षा-प्राप्त लड़कियों की बड़ी विरोधी थी और वह उनके विरुद्ध अधिकारियों के कान भरा करती थी, पर इतने पर भी स्त्रियों ने गवर्नमेंट की मुखालफत में अपने लिए कई शिक्षण-शालाएं खोल दीं। कितनी ही लड़कियां जब विदेशों से डाक्टरी परीक्षा पास करके लौटीं, तो उन्होंने अपने निजी खर्च से डाक्टरी स्कूल खोले और गवर्नमेंट को इस बात के लिए मजबूर किया कि वह उनके मार्ग में कोई रुकावट न डाले। अब जारशाही के सिर पर एक फिक्र और सवार थी, वह यह कि विदेश में जाकर ये लड़कियां क्रांतिकारियों के संसर्ग में आती हैं और फिर उनके द्वारा रूस में क्रांतिकारी विचारों का प्रचार होता है। इनको विदेश जाने से कैसे रोका जाय? ज्यूरिच में जो लड़कियां शिक्षा प्राप्त कर रही थीं, क्रांतिकारियों के संसर्ग से बचाने के लिए बुला ली गई। तब उन्होंने आंदोलन करना शुरू किया कि देश में ही स्त्रियों की उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय हों, तो हम क्यों विदेश जायं? आखिर तंग आकर गवर्नमेंट को स्त्रियों की शिक्षा के लिए चार विश्वविद्यालय खोलने ही पड़े। स्त्रियों के मेडिकल कालेज के मार्ग में जो-जो बाधाएं गवर्नमेंट की ओर से की गई, उनका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, पर फिर भी ये स्त्रियां हतोत्साह न हुईं और बराबर उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी। सन् १८९९ तक लगभग सात सौ स्त्रियां रूस में परीक्षा पास करके डाक्टरी करने लगी थीं।

प्रिंस क्रोपॉटकिन इन स्त्रियों की आश्चर्यजनक सफलता के विषय में

लिखते हैं—"इस सफलता का मुख्य कारण यह था कि जो स्त्रियां इस आंदोलन में मुखिया बनकर भाग ले रही थीं, जो इसकी आत्मा तथा प्राण थीं, वे अपने स्वार्थ के लिए नहीं लड़ रही थीं। वे उन स्त्रियों में से नहीं थीं, जो समाज में केवल अपना दर्जा ऊंचा करने के लिए लड़ती-झगड़ती हैं। सरकारी उच्च पदों की लालसा उनके मन में न थी। उनमें से अधिकांश की सहानुभूति साधारण जनता के साथ थी। फैक्टरियों में काम करनेवाली लड़कियों के साथ उन्होंने मैत्री स्थापित कर ली थी और उनके हितों के लिए वे लोभी मालिकों तथा लालची पूंजीपतियों से लड़ती थी। ग्राम्य पाठशालाओं में शिक्षिका बनने की ओर उनकी विशेष रुचि थी। जिन अधिकारों के लिए वे स्त्रियां लड़ रही थीं, वे केवल कुछ इने-गिने व्यक्तियों के ही अधिकार नहीं थे। वे सिर्फ यही नहीं चाहती थीं कि हमको उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मिल जाय, उनका उद्देश्य इससे कहीं उच्च था, यानी वे सर्वसाधारण की सेवा के लिए, दीन-हीन रूसी समाज के लिए, अधिक उपयोगी सेविका बनना चाहती थी। उनकी सफलता की असली कुंजी यही थी।"

जो लोग आज भारतवर्ष में 'क्रांति-क्रांति' चिल्लाते हैं, उन्हें क्रोपॉटकिन के उपर्युक्त शब्दों पर ध्यान देना चाहिए। जबतक भारतीय स्त्री-समाज में इस प्रकार की निःस्वार्थ सेवा के भाव उत्पन्न नहीं होते, तबतक वास्तविक क्रांति होना संभव नहीं।

पिता की मृत्यु

सन् १८७१ में क्रोपाटकिन के पिता की मृत्यु होगई। वह पुराने खयाल के आदमी थे और उसी पुरानी शान-शौकत से रहना पसंद करते थे। पर पिछले कुछ वर्षों से उनके आस-पास की स्थिति में बहुत अंतर आगया था। अब दासत्व की प्रथा बंद होगई थी। जिनके गुलाम थे, उन्हें रुपया दे दिया गया था और गुलाम मुक्त करा दिये गए थे। यह रुपया इन लोगों ने थोड़े दिनों में ही भोग-विलासमय जीवन में नष्ट कर दिया। अब इनकी जमीन तथा जायदादों पर व्यापारियों का अधिकार होगया। आखिर-

कार मास्को छोड़कर इन लोगों को ग्रामों अथवा छोटे-छोटे कस्बों में चले जाना पड़ा। मास्को के उस प्रसिद्ध मुहल्ले में, जहां पहले धनाढ्य-ही-धनाढ्य रहते थे, अब दूसरी तरह के आदमी आकर बस गए। क्रोपॉटकिन के रिश्ते-दारों के बीस कुटुंब पहले इसी मुहल्ले में रहते थे, पर उनमें से अब केवल दो कुटुंब ही बाकी बचे थे, शेष इधर-उधर चले गए। ये दो कुटुंब भी समय की गति से प्रभावित हुए बिना न रहे। इन कुटुंबों से क्रोपॉटकिन के पिता बड़ी घृणा करते थे, क्योंकि इन कुटुंबों में माताएं अपनी लड़कियों के साथ साधारण जनता के लिए विद्यालय और स्त्रियों के लिए विश्वविद्यालय इत्यादि नवीन विषयों पर बातचीत करती थीं। प्रिंस क्रोपॉटकिन के पिता इस बात से अत्यंत असंतुष्ट थे कि उनके दोनों लड़के ऐलेकजेंडर और क्रोपॉट-किन ने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया था। वह चाहते थे कि हमारे लड़के सैनिक जीवन व्यतीत कर उसी पुरानी शान से रहें, पर यह बात दोनों को नापसंद थी। जब क्रोपॉटकिन के पिताजी बहुत बीमार थे, तो दोनों भाई घर पहुंचे। पिताजी को आशा थी कि दोनों भाई अपनी गलती को मंजूर करके पश्चात्ताप करेंगे, पर दोनों ने ऐसा नहीं किया। जब पिताजी ने इस विषय की चर्चा चलाई भी तो दोनों भाइयों ने हँसकर यही जवाब दिया—"आप हमारी ओर से किसी प्रकार की फिक्र न कीजिए। हम लोग बड़े मज़े में हैं।" पिताजी को यह आशा थी कि प्राचीन पद्धति के अनुसार दोनों लड़के क्षमा-याचना करेंगे और रुपये भी मांगेंगे, पर उन्हें निराश होना पड़ा। रुपया न मांगना उन्हें और भी खटका, लेकिन उनके हृदय में दोनों बच्चों की दृढ़ता के लिए सम्मान भी बढ़ गया। जब दोनों भाई पिताजी से अलग होने लगे तो उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। ऐलेकजेंडर को तो अपनी नौकरी पर जाना था और क्रोपॉटकिन को फिनलैंड। यही उनकी अंतिम भेंट थी। जब पिताजी का अंतकाल निकट आया तो क्रोपॉटकिन के पास खबर भेजी गई। वह तुरंत फिनलैंड से लौटे, पर घर आकर उन्होंने अपने पिता का जनाजा निकलता हुआ देखा।

क्रोपॉटकिन ने तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन बड़े आकर्षक ढंग से

किया है। जिन आलीशान घरों में पुराने विचारों के बड़े-बड़े धनाढ्य कुटुंब रहते थे, अब वहां नई रोशनी के आदमी बस गए थे। वृद्धों, अधेड़ों तथा नवयुवकों में विचारों का संघर्ष जारी था। एक जनरलसाहब के एक लड़की थी। वह मास्को में स्त्रियों के लिए खुले नवीन विश्वविद्यालय में पढ़ना चाहती थी, पर जनरलसाहब तथा उसकी माता दोनों इस बात को निहायत नापसंद करते थे। दो बरस तक वह लड़की अपने माता-पिता से झगड़ती रही और तब कहीं उसे इस बात की इजाजत मिली कि वह विश्वविद्यालय में पढ़े और सो भी इस शर्त पर कि उसकी मां नित्यप्रति उसके साथ विश्व-विद्यालय में जाया करेगी! मां बराबर हर रोज अपनी लड़की को विद्यालय में ले जाती और अन्य बालिकाओं के साथ वह भी घंटों तक अपनी लड़की के साथ बैठी रहती, पर इस तमाम देखभाल और नियंत्रण के होते हुए भी दो वर्ष के भीतर ही लड़की के विचार क्रांतिकारी होगए। वह एक क्रांतिकारी दल में सम्मिलित होगई! पकड़ी गई और सालभर के लिए उसे सेंट-पीटर तथा सेंट-पॉल के भयंकर जेलखानों की हवा भी खानी पड़ी।

पास ही उसी मुहल्ले में एक और कुटुंब रहता था। काउण्ट महाशय तथा उनकी स्त्री का बड़ा कठोर शासन था। वे थे पुराने विचारों के, और उनकी लड़कियां थीं नई रोशनीवाली। लड़कियों को निरर्थक आलस्यमय जीवन बहुत अखरता था, वे उससे तंग आगई थीं और अपनी अन्य सहेलियों की तरह स्वतंत्रतापूर्वक विद्यालय में पढ़ना चाहती थीं, पर कठोर माता-पिता भला इसकी अनुमति क्यों देने लगे! वर्षों तक माता-पिता तथा पुत्रियों का झगड़ा चलता रहा। आखिर बड़ी लड़की ने निराश होकर ज़हर खा लिया और अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। तब कहीं छोटी बहन को विद्यालय में जाने की छूट मिली!

जिन घरों में पहले प्राचीन प्रथा के पोषक जमींदार रहते थे, वहां अब क्रांतिकारियों के अड्डे होगए!

स्विट्ज़रलैंड की यात्रा

सन् १८७२ में क्रोपॉटकिन ने स्विट्ज़रलैंड की यात्रा की। वहां वह अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के कार्यकर्ताओं से मिले। मजदूरों की जागृति के लिए जो आंदोलन अन्य देशों में हो रहे थे उनके विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनकी अभिलाषा बढ़ने लगी। क्रोपॉटकिन की भाभी उन दिनों ज़्यूरिच में पढ़ रही थीं। उन्होंने क्रोपॉटकिन को बहुत-सा साहित्य लाकर दिया। दिन-रात क्रोपाटकिन उसी साहित्य के पढ़ने में व्यस्त रहने लगे। क्रोपॉटकिन लिखते हैं:

"उस समय मैंने जो-कुछ अध्ययन किया, उसका अमिट असर मेरे दिमाग पर हुआ। मुझे अब भी उस छोटी-सी कोठरी की याद है, जिसमें बैठकर मैंने उस साहित्य का अध्ययन किया था। उस कोठरी में एक खिड़की थी, जिसके सामने एक विशाल नील झील दीख पड़ती थी, और कुछ फासले पर पहाड़ियां नज़र आती थीं। इन्हीं पहाड़ियों के निकट स्विटजरलैड के निवासियों ने अपनी स्वाधीनता के लिए अनेक लड़ाइयां लड़ी थीं। वह दृश्य अनेक पुण्यमय संग्रामों की याद दिलाता था।"

साम्यवादी साहित्य की विशेषता

जिस साम्यवादी साहित्य का अध्ययन क्रोपॉटकिन कर रहे थे, उसका ज़िक्र करते हुए वह लिखते हैं:

"साम्यवादियों के साहित्य में बड़े-बड़े पोथे नहीं हैं। यह साहित्य ग़रीब आदमियों के लिए लिखा जाता है और ग़रीबों के पास दो-चार आने से अधिक खर्च करने के लिए होता नहीं, इसलिए साम्यवादी साहित्य की मुख्य शक्ति उसकी छोटी-छोटी पैमफ्लेटों और समाचारपत्रों के लेखों में ही होती है। इसके सिवा साम्यवाद के ग्रंथों में वह चीज़ मिल भी नहीं सकती, जिसकी आवश्यकता इस विषय के प्रेमियों को हुआ करती है। ग्रंथों में तो सिर्फ सिद्धांतों का वर्णन रहता है और उन सिद्धांतों के समर्थन में वैज्ञानिक

युक्तियां रहती हैं, पर जो असली चीज है, यानी मजदूर लोग इन सिद्धांतों को किस प्रकार ग्रहण करते हैं और ये सिद्धांत व्यवहार में कैसे लाए जा सकते हैं, इन बातों के जानने के लिए साम्यवादी समाचारपत्रों का पढ़ना अत्यंत आवश्यक है। केवल अग्रलेख ही नहीं, बल्कि खबरें भी पढ़नी चाहिए, और लेखों की अपेक्षा खबरों को पढ़ना और भी अधिक आवश्यक है। आंदोलन की गहराई और उसके नैतिक प्रभाव का अंदाज•इन खबरों से ही लग सकता है। कोरमकोर सिद्धांतों से कुछ समझ में नहीं आता। जरूरत इस बात के जानने की है कि ये सिद्धांत कहांतक साधारण जनता के हृदय तक पहुंच गए हैं, और कहांतक वे अपने दैनिक जीवन में उन सिद्धांतों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए तैयार हैं।"

मज़दूरों के साथ निवास

साम्यवादी साहित्य को पढ़कर क्रोपॉटकिन को एक नई दुनिया का दृश्य दीखने लगा, वह दुनिया, जिसके विषय में समाज-शास्त्रों के सिद्धांतों के विद्वान् रचयिता बिल्कुल नहीं जानते, यानी मजदूर-संसार, जिसका सच्चा ज्ञान उसके बीच में रहकर ही हो सकता है। बस, क्रोपॉटकिन ने यही निश्चय किया कि दो महीने मजदूरों के बीच में गुजारे जायं। इसीलिए वे ज्यूरिच से चलकर जिनेवा पहुंचे। यहांपर उन्हें मजदूरों के साथ रहने और उनकी हालत देखने का अच्छा अवसर मिला। जब देश में मजदूर-संगठन का आंदोलन शुरू होता है तो उसका मजदूरों पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका जिक्र करते हुए क्रोपॉटकिन लिखते हैं:

"बिना मज़दूरों के साथ रहे, इस बात का पता ही नहीं लग सकता कि संगठन का प्रभाव मज़दूरों के दिमाग पर कैसा पड़ता है। वे इस संगठन में पूरा-पूरा विश्वास करने लगते हैं, जब कभी उसके विषय में बोलते हैं, तो बड़े प्रेम के साथ और हर तरह से उसकी सहायता करने के लिए आत्म-त्याग करने को उद्यत रहते हैं। हर रोज़ हज़ारों ही मज़दूर अपना समय देते हैं और भूखों मरकर बचाये हुए पैसे देते हैं। उन्हें इस बात की चिंता

रहती है कि हमारे चलाए हुए पत्र कहीं बंद न हो जायं। अपनी मजदूर-कांग्रेस के अधिवेशनों के लिए जो खर्च होता है, उसकी भी फिक्र उन्हें रहती है और अपना काम करते हुए जो साथी जेल जाते हैं या अन्य प्रकार से दंडित होते हैं, उनकी भी वे मदद करते हैं।....बाहर-वाले इस बात का अंदाज लगा ही नहीं सकते कि मज़दूरों को अपने आंदोलन के जीवित रखने के लिए कितना आत्म-त्याग करना पड़ता है। जिनेवा में मैंने देखा कि अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर-संघ का मेंबर होना भी मज़दूरों के लिए कोई कम साहस का काम नहीं था। उसके लिए भी बड़े नैतिक साहस की जरूरत थी, क्योंकि उससे मालिक लोग नाराज़ हो सकते और नौकरी से बरखास्त तक कर सकते थे। बरखास्त होने पर महीनों तक घर बैठे रहना पड़ता था। मज़दूर-संघ में शामिल होने पर कुछ-न-कुछ चंदा देना ही पड़ता था, और यह चंदा एक मामूली गरीब मज़दूर के लिए अपनी क्षुद्र आमदनी में से निकालना कोई आसान बात नहीं थी। मीटिंग में जाना भी इन बेचारों के लिए एक प्रकार का त्याग ही था, क्योंकि मज़दूरी करने के बाद जो घंटे बच रहते हैं, वे उनके आराम के लिए ही काफी नहीं थे, और दो घंटे मीटिंग में खर्च करने के मानी थे दो घंटे आराम में कमी करना। ये मज़दूर शिक्षा प्राप्त करने के लिए अत्यंत उत्सुक थे, पर उन शिक्षित स्वयंसेवकों की, जो इन लोगों को पढ़ाने के लिए उद्यत थे, संख्या अत्यल्प थी। बड़ी जरूरत इस बात की थी कि वे शिक्षित आदमी, जिनके पास अवकाश हो, इन मज़दूरों के पास आकर उन्हें अपना संगठन करना सिखलाते, लेकिन ऐसे आदमी बहुत कम थे, जो इन गरीब मजदूरों की निःस्वार्थ भाव से सेवा करने के लिए उद्यत हों। वैसे इनकी निस्सहाय अवस्था से लाभ उठाकर अपना राजनैतिक महत्व बढ़ानेवाले आदमियों की कमी नहीं थी। ज्यों-ज्यों मैं इन मजदूरों के साथ रहा, मेरा यह विश्वास दृढ़ होता गया कि इन गरीब मजदूरों की सेवा करना ही मेरे जीवन का प्रधान उद्देश्य है। स्टैपनियाक नामक क्रांतिकारी ने एक जगह लिखा है—'प्रत्येक क्रांतिकारी के जीवन में एक क्षण ऐसा

आता है—चाहे उस क्षण की घटना बिल्कुल क्षुद्र ही हो—जब वह इस बात की कसम खा लेता है कि मैं अपना सारा जीवन क्रांति के लिए अर्पित कर दूंगा।' वह क्षण मेरे जीवन में भी आया था। ज्यूरिच में रहते हुए मैंने देखा कि वे शिक्षित आदमी कितने कायर होते हैं, जो अपने ज्ञान और अपनी शक्तियों को उन लोगों की सेवा में अर्पित करने में संकोच करते हैं, जिन्हें ज्ञान तथा शक्ति की इतनी अधिक आवश्यकता है। मैंने दिल में कहा, 'देखो ये मजदूर अपनी गुलामी का अनुभव कर रहे हैं। ये उस दासता से अपना पिंड छुड़ाना चाहते हैं, पर इनके मददगार कौन है और कहां हैं? कहां हैं वे आदमी, जो सर्वसाधारण की सेवा करने के लिए आगे आवें—ऐसे आदमी नहीं, जो अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्त्ति के लिए इन बेचारों का उपयोग करके अपना मतलब गांठते है?"

क्रोपॉटकिन की ये बातें भारतीय मज़दूरों की वर्तमान स्थिति से कितनी मिलती-जुलती है? मज़दूरों की निस्सहाय अवस्था से लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करनेवाले और उनकी मदद से अपना राजनैतिक महत्व बढ़ानेवालों की इस देश में भी कमी नहीं है, पर क्रोपॉटकिन की तरह निःस्वार्थ सेवकों का तो अभाव ही समझिए।

अराजकवादी कैसे बने ?

प्रिंस क्रोपॉटकिन जिनेवा में अबतक जिन मज़दूर-नेताओं के संसर्ग में आए थे, वे बाहर प्लेटफार्म पर ज़ोर-ज़ोर के लेक्चर झाड़ते थे, पर भीतर-ही-भीतर बड़ी तिकड़मबाजी से काम लेते थे। क्रोपॉटकिन को उनकी यह दुरंगी चालें बहुत नापसंद आईं। उन्होंने एक नेता से कहा—"अंतर्जातीय मज़दूरसंघ की एक शाखा भी तो है, जो बाकुनिस्ट के नाम से प्रसिद्ध है (अनार्किस्ट शब्द का व्यवहार तबतक नहीं हुआ था), मैं उससे परिचय करना चाहता हूं।" उस नेता ने क्रोपॉटकिन को एक परिचय-पत्र दे दिया, और फिर क्रोपॉटकिन से कहा—"मालम होता है कि अब आप हमारे दल में वापस नहीं आयंगे। आप उन्हींके पास रह जायंगे।" क्रोपॉटकिन लिखते हैं—

'इन महाशय का अनुमान ठीक ही निकला।'

एक अराजकवादी नेता से मुलाकात

जूरा पहाड़ के निकट घड़ी बनानेवाले मजदूरों का एक संघ था। पहले तो क्रोपॉटकिन वहां जाकर एक सप्ताह रहे, पीछे वहां अराजकवादियों के नेताओं से मिलने का निश्चय किया। एक नेता का नाम था जेम्स गुलौम। ये महाशय एक छोटे-से प्रेस के मैनेजर थे और प्रूफ-रीडिंग का काम करते थे। इस काम से उन्हें इतनी कम आमदनी होती थी कि उन्हें रात के समय बैठकर जर्मन भाषा से फ्रेंच में अनुवाद करना पड़ता था, जिसके लिए उन्हें ५) रु० फार्म मिलता था। क्रोपॉटकिन लिखते हैं :

"जब मैं जेम्स गुलौम से मिलने के लिए गया और दो घंटे बातचीत करने के लिए मांगे, तो उसने कहा—'मुझे खेद है कि दो घंटे अपने वक्त में से मैं नहीं बचा सकता। मेरे प्रेस से आज शाम को एक स्थानीय पत्र का प्रथम अंक निकलनेवाला है। मुझे उसके प्रूफ तो देखने ही पड़ेंगे, साथ ही उसका संपादन भी करना पड़ेगा। पर्चों को लपेटकर उनपर पते लिखने के लिए कागज भी मुझे ही चिपकाने पड़ेंगे, और फिर लगभग एक हजार पते भी मुझे अपने हाथों से लिखने पड़ेंगे।' मैंने कहा—'पते लिखने का काम मेरे जिम्मे रहा।' उसने जवाब दिया, 'यह हो नहीं सकता, क्योंकि अधिकांश पते मुझे याद करने पड़े हैं, वे कहीं लिखे हुए नहीं रखे और जो थोड़े-से लिखे हुए हैं भी, वे ऐसे हस्ताक्षरों में कागज के टुकड़ों पर लिखे पड़े हैं कि उन्हें दूसरा कोई पढ़ नहीं सकता।' तब मैंने कहा—'तो फिर मैं आज शाम को आकर आपके पर्चों को लपेटकर उनपर पते लिखने के लिए कागज ही चिपका दूंगा। इससे आपका जो थोड़ा-सा समय बच जायगा, वह आप मुझे दे दीजिए'।"

यह सुनकर जेम्स गुलौम ने क्रोपॉटकिन से हाथ मिलाया और कहा—"तुम्हारी बात मंजूर है, शाम को आना।" दोपहर के समय क्रोपॉटकिन वहां पहुंचे और उन्होंने शाम तक अखबारों में चिटें चिपकाईं। गुलौम उनपर

पते लिखते रहे। जब रात होने को आई तो गुलौम ने काम पर से छुट्टी ली और दो घंटे क्रोपॉटकिन से बातचीत के लिए निकाले। दोनों बाहर टहलने के लिए गए, और फिर वहां से लौटकर गुलौम को जूरा फेडरेशन की अराजकवादी पत्रिका का संपादन करना पड़ा।

रूस को वापसी

जबतक क्रोपॉटकिन स्विट्जरलैंड में रहे, वह अराजकवाद के सिद्धांतों का अच्छी तरह अध्ययन करते रहे, या यों कहना चाहिए कि यहींपर वह अराजकवादी बने। यहीपर उनके विचारों में दृढ़ता भी आगई। क्रांति के विषय में भी उनके विचार स्पष्ट होने लगे। वह लिखते हैं :

"स्विट्जरलैंड में रहकर धीरे-धीरे यह बात मेरी समझ में आने लगी कि जब विकास धीरे-धीरे होने के बजाय बहुत तेजी से एक साथ होने लगता है तभी उसे क्रांति कहते हैं, और क्रांति भी मनुष्य-जाति के लिए उतनी ही स्वाभाविक है, जितना कि धीरे-धीरे क्रम-विकास। यह क्रम-विकास तो सभ्य समाज में बराबर होता ही रहता है। जब कभी क्रान्ति (या यों कहिए शीघ्र-विकास) का प्रारंभ होता है, तो उसके साथ थोड़ा-बहुत गृह-युद्ध भी प्रायः शुरू हो जाता है। देश के निवासियों में आपस में खून-खच्चर होने लगता है। उस समय यह सवाल नहीं उठना चाहिए कि क्रांति कैसे रोकी जाय, बल्कि यह प्रश्न होना चाहिए कि कम-से-कम खून-खच्चर से अधिक-से-अधिक लाभ कैसे उठाया जाय। कम-से-कम आदमी हताहत हों, कम-से-कम मात्रा में पारस्परिक विद्वेष फैले और क्रांति का उद्देश्य पूरा हो ही जाय। इसके लिए सर्वोत्तम उपाय यही है कि समाज के अत्याचार-पीड़ित भाग को यह बात साफ तौर पर बतला दी जाय कि उनका उद्देश्य क्या है। जबतक पीड़ित समाज को अपने ध्येय का बिल्कुल स्पष्ट ज्ञान न होगा, तबतक उनमें उसकी प्राप्ति के लिए उपयुक्त उत्साह नहीं हो सकता और बिना उत्साह के क्रांति में सफलता मिल ही नहीं सकती। यदि अत्याचार-पीड़ित समाज अपना ध्येय बिल्कुल साफ तौर पर निश्चित कर ले तो धनाढ्य

और सुशिक्षित जनता में जो भले आदमी हैं, उनमें से कुछ तो उसका साथ देने को अवश्य तैयार हो जायंगे।"

जब्त की हुई किताबों का रूस में प्रवेश

जब क्रोपॉटकिन स्वदेश को वापस आने लगे तो उन्होंने सोचा कि अब इकट्ठे किये हुए मसाले का क्या करना चाहिए। रूस में तो उसकी बिल्कुल मनाई थी और वहां के क्रांतिकारियों को इस साहित्य की बड़ी आवश्यकता थी। वहां वह किसी दाम पर भी नहीं मिलता था। आखिरकार उन्होंने यही तय किया कि वैसे हो तैसे इस साहित्य को रूस में प्रवेश कराना ही चाहिए। वियना और वारसा होते हुए वे सेंटपीटर्सबर्ग को लौटे। उन दिनों कितने ही यहूदियों का यह काम था कि वे जब्त-शुदा किताबें इसी तरह रूस में भेजकर अपनी गुजर करते थे। एक यहूदी के मारफत उन्होंने अपना सारा मसाला रूस को भिजवा दिया, जो किसी अगले स्टेशन पर उन्हें ज्यों-का-त्यों मिल गया।

निहिलिस्ट संप्रदाय

रूस में उन दिनों नवयुवकों में एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति का विकास हो रहा था। पिछले २५० वर्षों में, जब रूस में दासत्व-प्रथा बनी हुई थी, अनेक ढोंग और दंभपूर्ण प्रथाएं प्रचलित होगई थीं और इन प्रथाओं ने शिष्टाचार का रूप धारण कर लिया था। मनुष्यों के व्यक्तित्व का कोई खयाल नहीं किया जाता था। पिता लोग अपने पुत्रों पर जोर-जबरदस्ती करते थे। स्त्रियां, लड़कियां और पुत्रों का भी आचरण कपट-पूर्ण होगया था। रूस का संपूर्ण जीवन इसी दंभ तथा कपट का जीवन था। पुराने रीति-रिवाजों, दंभपूर्ण कुप्रथाओं और नैतिक कायरताओं ने धार्मिकता का रूप धारण कर लिया था। सरकारी कानून से तो इन कुप्रथाओं का अंत किया नहीं जा सकता था। इनके लिए तो आवश्यकता थी एक सामाजिक विद्रोह की, जिससे कि यह कपटाचरण जड़-मूल से नष्ट होजाय।

रूसी युवकों ने यह विद्रोह किया, और यह विद्रोह इतना अधिक व्यापक हुआ, जितना यूरोप तथा अमेरिका में भी नही हुआ था। सुप्रसिद्ध रूसी लेखक तुर्गनेव ने इस विद्रोह को 'निहिलिज्म' का नाम दिया था। इस शब्द का प्रयोग पहले-पहल उनके युगांतरकारी उपन्यास 'फ़ादर्स एण्ड चिल्ड्रन' ('पिता और पुत्र') में हुआ था।

सबसे पहला काम जो निहिलिस्ट लोगों ने किया, वह था 'सभ्य' मानव-समाज के ढोंगों का विरोध, उन ढोगों का जिन्होंने शिष्ट आचरण का रूप धारण कर लिया था। निहिलिस्ट लोगों का सर्वश्रेष्ठ गुण था पूर्ण सच्चाई। वे बुद्धिवादी थे, और किसी भी ऐसी रीति-रिवाज को, जो उनकी समझ में अक्ल के खिलाफ थी, मानने के लिए तैयार नहीं थे। प्रिंस क्रोपॉटकिन लिखते हैं :

"सभ्य कहलानेवाले आदमियों के जीवन छोटे-छोटे शिष्टतापूर्ण झूठों से भरे हुए होते हैं। सभ्य समाज में ऐसे बहुत-से आदमी देखने में आते हैं, जो मन में तो एक-दूसरे से घोर घृणा करते हैं, पर जब अकस्मात् कहीं मिल जाते है, तो अपने चेहरे से बड़ी प्रफुल्लता और मधुर मुस्कराहट जाहिर करते हैं, और यह दिखलाते है, मानों उन्हें एक-दूसरे से मिलकर बड़ी भारी खुशी हुई हो। निहिलिस्ट लोग इस प्रकार के दंभपूर्ण बर्ताव से घृणा करते थे। वे तभी मुस्कराते थे, जब किसी आदमी से मिलकर उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई हो। सारी ऊपरी दिखावट की नम्रताओं से, जो दरअसल दंभ का ही दूसरा रूप होती है, वे नफरत करते थे। इन निहिलिस्ट लोगों की प्रवृत्ति अपने पिताओं की प्रवृत्ति से बिल्कुल भिन्न थी।

"जिस पीढ़ी के पिता थे, वह ऊपरी मिलनसारी, नम्रता और आव-भगत में तो कमाल की होशियारी जाहिर करती थी, पर भीतर उसका हृदय बड़ा कठोर था। अपने बच्चों, स्त्रियों तथा दासों के हाथ इस पीढ़ी का बर्ताव जानवरों जैसा था, पर यह पीढ़ी ऊपर से बड़ी भावुक प्रतीत होती थी। निहिलिस्ट लोग इस भयंकर आडंबरपूर्ण भावुकता के विरोधी थे। निहि-

लिस्ट लोगों के पूर्व की पीढ़ी 'सौंदर्य', 'आदर्श', 'कला के लिए कला', तथा 'सौंदर्य-विज्ञान' इत्यादि विषयों पर बड़ी मौज के साथ गप्पें मारा करती थी, और कभी इस बात का खयाल भी नहीं करती थी कि कला की ये सुंदर चीजें उस रुपये से खरीदी जाती हैं, जो गरीबों का खून चूसकर इकट्ठा किया जाता है। भूखों मरनेवाले किसानों की कमाई से और आधे पेट रहनेवाले मजदूरों के वेतन से छीनकर इकट्ठे किये हुए रुपये से ये 'सौंदर्य-प्रेमी' कला की चीजों को खरीदते थे। बस, यह बात निहिलिस्ट लोगों को सुहाती न थी और वे टॉल्सटाय के शब्दों में कहा करते थे—'एक जोड़ी जूता तुम्हारे तमाम सुंदर-से-सुंदर चित्रों तथा शेक्सपीयर के विषय में तुम्हारे सभाषणों से कहीं अधिक उपयोगी है।' निहिलिस्ट लोगों के सिद्धांतों का प्रचार केवल लड़कों में ही नहीं, लड़कियों में भी होगया था। अमीर घरानों की अनेक लड़कियां अपने माता-पिताओं के घरों को छोड़कर निकल पड़ी थीं। उन्होंने गुड़ियों की तरह रहना और रेशमी कपड़े पहनना पसंद नहीं किया, और बजाय इसके वे मोटे-से-मोटे ऊनी कपड़े पहने तथा अपने बाल कटाए हुए हाई-स्कूलों में पढ़ने जाने लगी। अपनी व्यक्तिगत स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए उन्होंने अनेक कष्ट सहना अंगीकार किया। जिन स्त्रियों ने देखा कि उनके तथा उनके पतियों के बीच में कोई सच्चा स्नेह नहीं रहा है, और कानूनी विवाह बाहर से भीतरी प्रेमभाव को ढके हुए है, वे अपने पतियों को छोड़कर अलग होगईं। ऐसी स्त्रियां को अपने बच्चों के साथ गरीबी का मुकाबला करना पड़ा, पर उन्होंने अपनी आत्मा की विरोधी तथा अपने स्वभाव के सर्वोत्तम गुणों की नाशक पहले की दंभपूर्ण परिस्थिति से इसे कहीं अच्छा समझा।

"निहिलिस्ट लोग नित्यप्रति की छोटी-छोटी बातों में भी सच्चाई से काम लेते थे। समाज में बातचीत करने का जो परंपरागत ढंग था, उसे भी निहिलिस्ट लोगों ने तिलांजलि दे दी थी, और जो कुछ उन्हें कहना होता था, उसे संक्षेप में और खरे ढंग से कह देते थे, बल्कि ऊपर से कुछ रूखापन भी जाहिर करते थे।"

क्रोपॉटकिन का लिखा हुआ निहिलिस्ट लोगों का विवरण सचमुच बड़ा मनोरंजक है। हमारे यहां के युवक-आंदोलनों में निहिलस्टि लोगों की-सी स्पष्टवादिता तथा दंभ-हीनता की नितांत आवश्यकता है।

साधारण जनता की ओर

सन् १८६०-१८६५ में यानी आज से ९५ वर्ष पूर्व रूसी नवयुवकों ने जो कार्य कर दिखाया था, वह अभी हमारे यहां प्रारंभ ही नहीं हुआ! वह काम था सर्वसाधारण की—गांववालों की—सेवा का। प्रिंस क्रोपाटकिन लिखते हैं :

"हजारों ही रूसी नवयुवक सादा जीवन व्यतीत करते हुए सर्वसाधारण की सेवा कर रहे थे। उनका ध्येय था 'जनता की ओर चलो' 'सर्वसाधारण की तरह रहो' (To the people, be the people)। उस समय रूस के अमीर घरानों के माता-पिताओं तथा पुत्र-पुत्रियों में एक तरह का संघर्ष-सा छिड़ा हुआ था। माता-पिता यह चाहते थे कि हमारे लड़के तथा लड़कियां प्राचीन परंपरा को कायम रखें, पर यह नई पीढ़ी अपने जीवन को अपने आदर्शों के ढांचे में ढालना चाहती थी। नवयुवकों ने फौज की, बैंकों की तथा दुकानों की नौकरी छोड़ दी और वे उन नगरों में आकर इकट्ठे होगए, जहां विश्वविद्यालय थे। बड़े-बड़े घरानों की लड़कियां बिना पैसे के सेंटपीटर्सबर्ग तथा मास्को को आती थीं और वहां आकर कोई ऐसा धंधा सीखती थीं, जिससे उन्हें स्वाधीनता मिले। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के बाद उन्हें यह स्वाधीनता मिली, पर यह स्वाधीनता उन्होंने अपने सुख-उपभोग के लिए प्राप्त नहीं की थी, बल्कि वे यही चाहती थीं कि उस ज्ञान को वे साधारण जनता तक—गरीब किसान-मजदूरों तक—ले जायं, जिसने उन्हें पराधीनता से मुक्त किया था। रूस के प्रत्येक नगर में और सैंटपीटर्सबर्ग के प्रत्येक मुहल्ले में लड़कों तथा लड़कियों के छोटे-छोटे समूह बन गये थे, जिनका उद्देश्य था आत्म-शिक्षण तथा आत्मोन्नति। इन समूहों में तत्ववेत्ताओं के लेख, अर्थशास्त्रियों के प्रबंध तथा इतिहास-

लेखकों के गवेषणापूर्ण निबंध पढ़े जाते थे और फिर उनपर खूब बहस होती थी, पर इस निबंध-पाठ तथा वाद-विवाद का उद्देश्य एक ही था, यानी 'हम लोग साधारण जनता (Masses) के लिए किस प्रकार उपयोगी बनें।' धीरे-धीरे ये युवतियां और नवयुवक इस परिणाम पर पहुंचे कि साधारण जनता की सेवा करने का एक ही उपाय है, यानी उनके बीच में जाकर बसना और उन्हीं-जैसी ज़िंदगी व्यतीत करना। ये नवयुवक डाक्टर, कंपाउंडर, शिक्षक, लुहार, बढ़ई तथा मजदूर इत्यादि बनकर ग्रामों में पहुंचे और गांववालों के साथ रहने लगे। लड़कियों ने शिक्षिकाओं तथा दाइयों और नर्सों का काम सीखा और सैकड़ों की तादाद में गांवों में पहुंच कर वहां गरीब-से-गरीब आदमियों की सेवा करने लगीं। ये नवयुवक और ये युवतियां समाज-संगठन या क्रांति के विचारों के उद्देश्य से ग्रामों में नहीं गई थीं। उस वक्त उन्हें इसका खयाल भी नहीं था। उस वक्त तो उनका उद्देश्य केवल यही था कि जनता को लिखना-पढ़ना सिखाया जाय, बीमार पड़ने पर उनके लिए दवा का प्रबंध किया जाय तथा अज्ञानांधकार से उन्हें निकालकर ज्ञान के प्रकाश में लाया जाय। साथ ही ये युवक ग्रामवासियों के विचारों से भी परिचित होना चाहते थे। वे यह जानना चाहते थे कि समाज-सुधार के विषय में इनके क्या खयाल हैं।"

हमारे देश के नवयुवक प्रिंस क्रोपॉटकिन की इन बातों को पढ़ें और फिर सोचें कि क्रांति किस चीज को कहते हैं, और उसके लिए प्रारंभिक तैयारी किस तपस्या तथा त्याग के साथ की जाती है। क्रांति का नारा लगाना आसान काम है, लेकिन सच्ची क्रांति की तैयारी में योग देना बड़ा ही कठिन है।

सत्साहित्य का प्रचार

उन दिनों रूस की ठीक वैसी ही हालत थी, जैसी कि कुछ वर्ष पहले भारतवर्ष की थी। षड्यंत्रों का सफलतापूर्वक संचालन करना संभव नहीं था। सन् १८६९ में नीचेफ नामक एक रशियन ने एक षड्यंत्रकारिणी संस्था

कायम की थी, पर उसे सफलता नहीं मिली। जितने सदस्य इस सभा के बने थे, सब पकड़ लिये गए, और रूस के सर्वश्रेष्ठ युवकों को देश-निकाला देकर साइबेरिया भेज दिया गया। बेचारे कुछ काम भी न कर पाए। षड़-यंत्रकारियों को प्राय: असत्य और धोखेबाजी का भी आश्रय लेना पड़ता है और नीचेफ के साथी भी उन सब धूर्तताओं से काम लेते थे। उन्हीं दिनों इन षड्यंत्रकारी युवकों की कार्य-पद्धति के विरोध में दूसरे युवकों ने एक और संस्था कायम की थी, जिसका नाम था 'चेकोवस्की का सत्संग'। इस सत्संग ने रूस के सामाजिक आंदोलन मे काफी भाग लिया था और इसके द्वारा आगे चलकर बड़ा जबरदस्त काम हुआ। प्रिस कोपॉटकिन इस सत्संग के सदस्य बन गए। इस संस्था का उद्देश्य था आत्म-शिक्षण। इस संस्था के सदस्यों ने यह बात पहले ही समझ ली थी कि यदि हम किसी संस्था को चिरस्थायी बनाना चाहते है तो उसकी नीव सच्चरित्रता पर पर रखी जानी चाहिए। प्रिस क्रोपॉटकिन ने इसका जिक्र करते हुए एक बड़ा महत्वपूर्ण वाक्य लिखा है, जिसकी ओर उन सबको, जो भारत मे संस्थाओं के संचालक है, ध्यान देना चाहिए। वह लिखते है—'उन थोड़े-से मित्रों ने, जिन्होंने चेकोवस्की के सत्संग की स्थापना की थी, यह बात अच्छी तरह समझ ली थी (और उनकी यह समझ बिल्कुल ठीक भी थी) कि प्रत्येक संस्था के मूल में नैतिक दृष्टि से विकसित (सच्चरित्रता-युक्त) व्यक्तित्व होना चाहिए, आगे चलकर उस संस्था का चाहे जो राजनैतिक रूप हो और भविष्य में वह चाहे जो कार्यक्रम निश्चित करे।"

प्रिंस क्रोपॉटकिन की यह बात कितने तजुरबे की है। जो लोग झूठ, दगाबाजी और फरेब का आश्रय लेकर देश का उद्धार करना चाहते है और जो अपने विरोधियों के पतन के लिए किसी भी तरह के हेय उपाय काम में ला सकते है, वे इन पंक्तियों को पढ़ें।

चेकोवस्की के सत्संग मे ऐसे ही व्यक्ति थे, जो नीतिवान् थे। क्रोपॉटकिन लिखते हैं— "यही कारण था कि चेकोवस्की के सत्संग का कार्यक्रम धीरे-धीरे काफी व्यापक बन गया और उसकी शाखाएं तमाम

रूस देश में फैल गई। आगे चलकर जब गवर्नमेंट के घोर अत्याचारों के कारण देश में क्रांतिकारी संग्राम शुरू हुआ तो इस सत्संग ने कितने ही ऐसे स्त्री और पुरुष उत्पन्न किए, जिन्होंने रूस की जारशाही के विरुद्ध युद्ध करते हुए अपने प्राण अर्पित कर दिये।"

क्रोपॉटकिन इस सत्संग की प्रारंभिक दशा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—"सन् १८७२ में इस सत्संग के सामने कोई क्रांतिकारी कार्य-क्रम नहीं था। उस समय उसका एकमात्र उद्देश्य था 'आत्म-शिक्षण', पर यदि इसका उद्देश्य यहीतक परिमित रहता, तब तो, जैसाकि प्रायः मठों में हुआ करता है, उसकी उन्नति रुक जाती, पर सदस्यों ने एक उपयुक्त कार्य अपने लिए चुन लिया था, और वह था सत्साहित्य का प्रचार। ये लोग अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीदते, मसलन मार्क्स की किताबें, रूस के ऐतिहासिक ग्रंथ और मजदूरों की हालत से संबंध रखनेवाली किताबें इत्यादि। सत्संग के सदस्य इन किताबों को खरीदकर प्रांतीय नगरों के पाठकों तक पहुंचाते थे। थोड़े दिनों में यह कार्य इतना व्यापक होगया कि रूस के ३८ प्रांतों में एक भी प्रांत ऐसा नही बचा कि जहां इस प्रकार के साहित्य के प्रचारक न हों। धीरे-धीरे यह सत्संग शिक्षित आदमियों में साम्यवादी साहित्य के प्रचार करने का केंद्र बन गया। आगे चलकर विद्या-र्थियों तथा किसानों और मजदूरों के बीच संबंध स्थापित करने में यह सत्संग बड़ा सहायक हुआ। इसी अवसर पर सन् १८७२ ई. में मै इस सत्संग का सदस्य बना। उन दिनों रूस मे तमाम गुप्त समितियां दमन की शिकार बनाई जाती थीं। इस 'आत्म-चरित' के पाश्चात्य पाठक शायद मुझसे यह आशा करते होंगे कि मै उन्हें यह बतलाऊं कि इस सत्संग में प्रवेश-संस्कार कराते समय मुझे क्या-क्या रस्में अदा करनी पड़ी और कौन-कौन शपथें खानी पड़ीं, पर मुझे ऐसे पाठकों को निराश ही करना पड़ेगा। इस सत्संग के कोई विशेष नियम नहीं थे, सिर्फ एक बात का खयाल रखा जाता था, वह यह कि केवल उन्हीं लोगों को इसका सदस्य बनाया जाय, जिनकी परीक्षा संकट में की जा चुकी हो और जो कष्टों की कसौटी में खरे

उतर चुके हों।

"किसी नए सदस्य को शामिल करने के पहले उसके चरित्र की पूर्ण स्पष्टता तथा गंभीरता के साथ आलोचना की जाती थी। स्पष्टता तथा ईमानदारी निहिलिस्ट लोगों का विशेष गुण था। यदि किसी आदमी में थोड़ा भी फरेब या अहंकार पाया जाता तो उसका दाखिल होना असंभव था। सत्संगवालों को इस बात की फिक्र नहीं थी कि उसके सदस्यों की संख्या खूब बढ़ जावे। सत्संग यह भी नहीं चाहता था कि देश की भिन्न-भिन्न संस्थाएं जो काम कर रही है, वह सब हमारे द्वारा ही हो। उस वक्त रूस में जनता की सेवा के लिए कितने ही गिरोह काम कर रहे थे। चेकोवस्की का सत्संग यह नहीं चाहता था कि वे हमारे अधीन होजायं। अधिकांश गिरोहों के साथ सत्संग का मित्रतापूर्ण संबंध था, सत्संग उनकी मदद भी करता था, और वे भी सत्संग की मदद करते थे, पर एक-दूसरे की स्वाधीनता में कोई बाधा नहीं पहुंचाता था।

"इस प्रकार हमारा सत्संग थोड़े-से मित्रों का दृढ़ समूह था। जिन पंद्रह-बीस स्त्री-पुरुषों से मेरा परिचय इस सत्संग में हुआ, वैसे नीतिवान् और सच्चरित्र व्यक्ति मुझे जीवन में अन्यत्र नहीं मिले।"

क्रांतिकारी लड़कियां

उस समय रूस में जो लड़कियां देश के उद्धार के लिए कार्य कर रही थीं, उनके चरित्र का वृत्तांत सचमुच अत्यंत उत्साहप्रद है। प्रिंस क्रोपॉटकिन लिखते हैं— "एक लड़की का नाम था सोफिया पीरोवस्काया। यह एक अत्यंत उच्च घराने की थी और उसने अपना बनावटी नाम रख छोड़ा था। इस लड़की का पिता पहले सेंटपीटर्सबर्ग का मिलिटरी-गवर्नर रह चुका था। यह लड़की अपनी माता से, जो उसे बहुत प्रेम करती थी, आज्ञा लेकर हाई-स्कूल में पढ़ने के लिए चली आई थी और इसने अन्य तीन लड़कियों के साथ आत्म-शिक्षण का एक समूह कायम कर लिया था। इस लड़की के घर पर मेरी तथा मेरे साथियों की मीटिंग हुआ करती थी। यह लड़की जो, पहले सेंटपीटर्सबर्ग के ऊंचे-से-ऊंचे भवनों में अच्छी-से-अच्छी पोशाक

पहने हुए दीख पड़ती थी, अब बिल्कुल मजदूर लड़कियों की तरह रहती थी। वह मोटे सूती कपड़े पहनती थी, पुरुषों के-से जूते पहनती थी और जब वह अपने कंधे पर पानी के भरे हुए डोल रखकर लाती थी, तो उसे देखकर यह कोई भी नही ताड़ सकता था कि यह किसी उच्च घराने की लड़की है। जब हम लोग किसानों के-से कपड़े और गंवारों के-से जूते पहने हुए उसके घर में घुसते और इन जूतों से उसका साफ-सुथरा घर मैला हो जाता तो उसके भोलेभाले निष्कलंक चेहरे पर बड़ी कठोरता आ जाती थी और वह हम सबको डांट बतला देती थी। नैतिक दृष्टि से वह बड़ी संयमशील थी, लेकिन वह उपदेश देनेवाली नही थी। जब उसे किसी सदस्य की कोई बात नामुनासिब जंचती तो वह बड़ी कठोरता से उसकी ओर दृष्टिपात करती। चरित्र-संबंधी मामलों में वह बड़ी कठोर थी। एक आदमी का जिक्र करते हुए उसने कहा था—'वह तो जनखा है।' जिस समय उसने ये शब्द अपना कार्य करते हुए कहे थे और जिस ढंग से कहे थे, वह अबतक मुझे भली-भांति स्मरण है और मैं उसे कभी नहीं भूल सकता। उसकी वह मुद्रा मेरी स्मृति में जमकर बैठ गई है। यह लड़की क्रांतिकारी विचारों की थी और यह बड़ी दृढ़प्रतिज्ञ तथा वीरात्मा थी। किसानों और मजदूरों के लिए काम करना ही उसके जीवन का एकमात्र ध्येय था। एक दिन उसने मुझसे कहा —'हमारे समुदाय ने बड़ा ज़बरदस्त काम उठाया है; इसके पूर्ण करने में दो पीढ़ियां बीत जायंगी, पर यह काम होना जरूर चाहिए और पूरी तौर पर।' हमारे साथ काम करनेवाली लड़कियों में एक भी ऐसी नहीं थी,जो फांसी से डरती हो। मौका आने पर सभी फांसी के तख्ते पर हँसी-खुशी के साथ चढ़ सकती थी, पर जिस समय हम लोग सत्साहित्य के प्रचार में लगे हुए थे, उस समय उनमें से किसीको यह खयाल भी नहीं था कि फांसी का मौका भी आयगा। जब आगे चलकर पीरोवस्काया पकड़ी गई और उसको फांसी का हुक्म हुआ तो उस समय मृत्यु के कुछ घंटे पहले उसने जो चिट्ठी अपनी माता को लिखी थी, वह बड़ी करुणाजनक है और उसमें एक स्त्री की प्रेममय आत्मा का सच्चा स्वरूप प्रतिबिंबित है।"

क्रोपॉटकिन ने एक दूसरी लड़की का जिक्र करते हुए कहा है:—
"एक दिन रात को हमें अपने कार्यक्रम से संबंध रखनेवाली जरूरी बात अपने साथ की एक लड़की को बतलानी थी, इसलिए रात के वक्त मैं अपने एक मित्र के साथ वहां गया। आधी रात बीच चुकी थी, पर उस लड़की के कमरे में दीपक जल रहा था। हम लोग ऊपर गये, देखा तो वह हमारे कार्यक्रम की नकल करती हुई पाई गई ! मुझे उस वक्त एक मजाक सूझा। मैंने कहा—'हम लोग तुम्हें बुलाने के लिए आये हैं। बात यह है कि किले में हमारा जो साथी कैद है, आज हम छापा मारकर उसे छुड़ाना चाहते हैं। उसीके लिए तुम्हारी जरूरत पड़ी है। उसने हमसे एक भी सवाल नहीं किया। तुरंत ही कलम रखकर कुर्सी पर से उठ बैठी, और बोली—'तो चलो।' यह शब्द उसने इतनी सच्चाई और भोलेपन के साथ कहे थे कि उसे सुनकर मुझे अपने मज़ाक की मूर्खता पर लज्जित होना पड़ा। जब मैंने उसे बतलाया कि हम लोगों ने तो सिर्फ मज़ाक किया था तो वह अपनी कुर्सी पर बैठ गई, उसकी आंखों में आंसू आगये और निराशापूर्वक उसने कहा—'क्या सचमुच तुम्हारा यह मज़ाक ही था ? भला ऐसा मज़ाक क्यों करते हो ?' उसका यह उत्तर सुनकर मुझे पता लगा कि मैंने कैसा निर्दयतापूर्ण कार्य किया है।"

क्रोपॉटकिन के इस कथन से ज्ञात होता है कि उस समय रूस की लड़कियों के हृदय में स्वार्थ-त्याग तथा आत्म-बलिदान के भाव किस हद-तक घर कर गए थे।

क्रोपॉटकिन का मित्र-मंडल

अत्याचारी जारशाही के दिनों में प्रिंस क्रोपॉटकिन तथा उनके साथियों को जो महान कष्ट सहने पड़े उनकी कथा बड़ी मनोवेधक है। इन महापुरुषों के जीवन सचमुच उत्साह-प्रद है। क्रोपॉटकिन ने अपने एक साथी सर्घेई क्रावचिंसकी का हाल इन शब्दों में लिखा है—इंगलैंड तथा अमेरिका में सर्घेई क्रावचिंसकी स्टैपनियाक के नाम से प्रसिद्ध थे।

हम लोग अपने मित्रमंडल में उन्हें 'बच्चे' के नाम से पुकारा करते थे। अपनी रक्षा के विषय में इतने लापरवाह रहते थे कि इसीके कारण उनका उपर्युक्त नाम पड़ गया था। उनकी इस लापरवाही के मूल में उनकी निःशंक निर्भयता थी। डरना तो वह जानते ही न थे, और पुलिस जिस आदमी का पीछा कर रही हो उसके लिए सर्वोत्तम नीति भी प्रायः यही है कि वह बिल्कुल निडर बना रहें। किसानों तथा मजदूरों में हमारे इस मित्र ने बड़ा जबरदस्त प्रचार-कार्य किया था, और इसीलिए पुलिस भी इनकी तलाश में रहती थी, पर सर्घेई ने कभी इसकी परवाह नहीं की, और न कभी अपने को छिपाने का कुछ प्रयत्न ही किया। एक बार तो उनकी इस उद्दण्ड लापरवाही के लिए हमारे मित्र-मंडल ने उन्हें खासी डांट बतलाई थी। बात यह थी कि उस स्थान से, जहां हम लोगों की मीटिंग हुआ करती थी, सर्घेई की जगह दूर थी, और वह वहां अक्सर देरी से पहुंचते थे। किसानों की तरह भेड़ की खाल ओढ़े हुए वह सदर सड़क के बीचों-बीच दनादन भागे आते थे। हम लोगों ने उन्हें फटकार बतलाते हुए कहा—'तुम भी बड़े अजीब आदमी हो! भला ऐसी बेवकूफी क्यों करते हो? मान लो, तुम्हें इस तरह भागते हुए देखकर किसी पुलिसवाले के दिल में शंका पैदा हो जाती और वह तुम्हें चोर समझ के पकड़ लेता तो?' पर मित्रवर सर्घेई अपने विषय में जितने ही लापरवाह थे, दूसरों के विषय में वह उतने ही अधिक सावधान और चिंताशील थे। क्या मजाल कि उनकी जबान से कोई ऐसी बात निकल जाय, जिससे भेद खुल जाय और दूसरे आफत में जा फंसें! क्या ही अच्छा होता, यदि हम लोगों में से प्रत्येक आदमी दूसरों की रक्षा के विषय में उतना ही सावधान रहता, जितना मित्रवर सर्घेई थे। मेरी उनकी घनिष्ठ मित्रता कैसे हुई, यह भी सुन लीजिए। एक दिन रात के बारह बजेतक हमारे मंडल में बातचीत होती रही। मीटिंग खतम करके जब हम लोग जानेवाले थे, उस समय एक लड़की ने आकर कहा—'मेरे पास एक अंग्रेजी किताब है, सवेरे तक इसके १६ पृष्ठों का अनुवाद हो जाना चाहिए। आठ बजे मुझे अनुवाद तैयार मिले। बोलिए, आप लोगों में से यह कार्य

कौन कर सकेगा ?" मैंने किताब का आकार देखा, और कहा— 'अगर मुझे कोई सहायक मिल जाय तो मै रात-भर मे ही सारा काम कर सकता हूं।" सर्घेई ने कहा— 'मै तैयार हूं।' बस, हम दोनों जुटकर बैठ गए, और चार बजे ही १६ पृष्ठों का अनुवाद खतम कर डाला। फिर मूल अंग्रेजी से हमने अपने अनुवादों को मिलाकर दुहराया। इसके बाद एक थालभर के दलिया हम लोग हज्म कर गए, जो मेज पर हम दोनो के लिए पुरस्कार-स्वरूप रख दिया गया था। इस प्रकार कार्य समाप्त कर हम दोनों घर लौटे। इसी रात से हम दोनों में घनिष्ठ मित्रता होगई। ऐसे आदमियो को मैं हमेशा पसंद करता रहा हूं, जिनमे कार्य करने की प्रबल शक्ति हो और जो अपना काम मन लगाकर अच्छी तरह करे। सर्घेई के अनुवाद ने और शीघ्रतापूर्वक कार्य करने की प्रवृत्ति ने मुझपर अच्छा प्रभाव डाला था और ज्यों-ज्यों मेरी उनकी घनिष्ठता बढती गई, मेरे हृदय मे उनके प्रति सम्मान भी बढ़ता गया। वह ईमानदार थे, स्पष्टवक्ता थे, उनमे युवकों-जैसा उत्साह था, सुलझी हुई तबीयत के थे, तथा बुद्धिमत्ता भी उनमें उच्चकोटि की थी। उनके इन गुणो ने और उनकी सादगी, सच्चाई, हिम्मत और लगन ने मुझे मुग्ध कर लिया। उन्होंने बहुत-कुछ पढा था और विचार भी काफी किया था। क्रांतिकारी संग्राम के विषय मे, जो हम लोगों ने छेड़ रखा था, हम दोनो के विचार बहुत-कुछ मिलते-जुलते थे। वह मुझसे उम्र में दस वर्ष छोटे थे और शायद उन्हे इस बात का ज्ञान नही था कि आगे चलकर क्राति कैसा भयकर रूप धारण करेगी और भावी सग्राम हम लोगो के लिए कैसा कठिन सिद्ध होगा। बहुत दिनों बाद उन्होंने मुझे बतलाया कि किसानों में वह किस ढंग से प्रचार करते थे—'एक दिन मै अपने एक मित्र के साथ सड़क पर जा रहा था कि इतने में एक किसान उस तरफ आ निकला। वह गाड़ी पर बैठा हुआ था, जिसमे एक घोड़ा जुता हुआ था। मैंने उस किसान से कहना शुरू किया कि तुम टैक्स मत दो; सरकारी अफसर तो साधारण जनता को लूटते है। बाइबिल से मैंने कई दृष्टांत देकर उसे यह समझाना शुरू किया कि विद्रोह करना तुम्हारा कर्तव्य है। किसान कुछ घबराया

और उसने अपने घोड़े में एक चाबुक जमाया। हम लोग भी उसके पीछे-पीछे भागे। फिर उसने घोड़े को दुलकी चाल चलाना शुरू किया, बस हम लोग भी उसके पीछे उसी चाल से चलने लगे। गरज यह कि उसे टैक्स न देने और विद्रोह करने का उपदेश देना मैंने बंद न किया। आखिरकार इस उपदेश से तंग आकर उसने घोड़े को सरपट दौड़ाया, पर बेचारा घोड़ा कमजोर था। घोड़ा क्या था एक किसानू टट्टू, जिसे पेट-भर खाना नहीं मिलता था, इसलिए बहुत तेजी से दौड़ न सका। इस कारण हम लोगों ने उसे जल्दी ही पकड़ लिया। मतलब यह कि भागते-भागते जबतक हमारी सांस न फूली, तबतक हम अपना प्रचार-कार्य करते ही रहे!'

पत्र-व्यवहार का अजीब तरीका

आपस में किस प्रकार पत्र-व्यवहार करते थे उसके बारे में क्रोपॉटकिन लिखते हैं:

"कुछ दिनों के लिए सर्घेई को एक दूसरे प्रांत में जाना पड़ा। आपस में पत्र-व्यवहार की आवश्यकता हुई। यदि सब बातें साफ-साफ लिखते, तब तो पुलिस फौरन ही पकड़ लेती। भिन्न-भिन्न बातों के चिह्न बनाकर लिखना सर्घेई को बहुत नापसंद था, इसलिए मैंने उनसे कहा कि अच्छा एक तरकीब करें। चिट्ठी इस प्रकार लिखी जाय कि प्रत्येक पांचवां या और किसी नंबर का अक्षर सार्थक हो और उन अक्षरों के मिलाने से पूरे वाक्य बन जायं, जिससे हमारा मतलब पूरा हो जाय। इस प्रकार की लेखन-प्रणाली पहले भी षड्यंत्रों में काम में लाई जा चुकी थी।"

चिट्ठी इस प्रकार लिखी जाती थी:

'Excuse my hurried letter. Come to-night to see me; to-morrow I shall go away to my sister. My brother Nicholas is worse; it was late to perform an operation.'

अर्थात्—'माफ कीजिए, जल्दी में हूं। आइए मुझसे रात को ही मिलिए। कल बहन के यहां रवाना हो जाऊंगा। निकोलस की तबीयत और बदतर है। यहां आपरेशन हुआ लेकिन काफी देर में।"

इस पत्र में प्रत्येक पांचवां शब्द ही सार्थक है, शेष बातें योंही लिख दी गई हैं। पांचवें शब्द मिलाकर पढने से यह वाक्य बनता है—'Come to-morrow to Nicholas late.' अर्थात्—'आइए, कल निकोलस के यहां देर में।'

इस ढंग से चिट्ठी लिखना आसान काम न था। क्रोपॉटकिन लिखते हैं :

"इस प्रणाली से लिखने में परिश्रम काफी पड़ता था। जो बात वैसे मामूली तौर पर एक पृष्ठ में लिखी जा सकती थी, उसके लिए हमें पांच-पांच और सात-सात पन्ने लिखने पड़ते थे। इसके साथ ही अक्ल भी काफी लगानी पड़ती थी। अनेक बातों की कल्पना करनी पड़ती थी, जिससे वे शब्द, जिनकी हमें आवश्यकता थी, यथास्थान बिठलाए जा सकें। सर्घेई को पत्र-व्यवहार का यह ढंग बहुत पसद आया। उसने मुझे ऐसी चिट्ठियां भेजना शुरू किया, जिनमे बड़ी मनोरंजक कहानियां रहती थी और जिनका अंत नाटकों की तरह अत्यंत आश्चर्यमय होता था!

"सर्घेई ने एक बार मुझसे कहा था कि इस प्रकार के पत्र-व्यवहार के कारण मेरी साहित्यिक प्रतिभा जागृत होगई। अगर किसीमें प्रतिभा हो, तब तो प्रत्येक बात उसके विकास में सहायक ही होती है।"

ग्रामों में क्रांति का प्रचार

"१८७४ की जनवरी या फरवरी मे, जब मै मास्को में था, एक आदमी ने मुझसे आकर कहा कि आपसे एक किसान मिलना चाहता है। बाहर जाकर देखा, तो मित्रवर सर्घेई विद्यमान थे! उन्हें पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था, पर वह उसे चकमा देकर भाग आये थे। शरीर के बह खूब हृष्ट-पुष्ट थे और उनके साथ रोगचाफ नामक एक मित्र भी था। वह भी काफी ताकतवर था। गांवों में वे दोनों लकड़ी चीरने का काम

करते हुए घूमते थे, और क्रांति का संदेश ग्रामीण जनतातक पहुंचाते थे। लकड़ी चीरने का काम काफी कठिन था, और उनके हाथ इसके लिए अभ्यस्त भी नही थे, पर वे दोनों इस काम को खूब पसंद करते थे। इन दोनों को देखकर कोई भी यह नही ताड़ सकता था कि ये लकडी चीरने-वाले दरअसल कौन है। पंद्रह दिन तक तो बिल्कुल बे-खटके वे दोनों क्रांतिकारी प्रोपेगंडा करते रहे, और किसीको इस बात का शक भी नहीं हुआ कि आखिर ये है कौन ? कभी तो सर्घेई बाइबिल से, जो उसे कण्ठस्थ थी, कुछ वाक्य कहकर ग्रामवासियों को यह धार्मिक उपदेश देता कि क्रांति करना तुम्हारा कर्तव्य है और कभी वह अर्थशास्त्र की बाते समझाकर उन्हे गदर करने की सलाह देता। उन दोनों उपदेकों को ग्राम्य जनता ने ईश्वर-प्रेरित धर्म-दूत समझा। किसान लोग बड़े ध्यान से उनकी बातें सुनते थे। उन्हे घर-घर लिये फिरते थे और उनसे भोजन के दाम भी नही लेते थे। कोई पंद्रह दिनों में ही उन दोनों लकड़ी चीरनेवालों ने आस-पास के दस-बीस ग्रामों में खासी हलचल पैदा कर दी। उनकी कीर्ति भी चारों ओर फैलने लगी। किसान लोग—युवक और वृद्ध—खेत और खलिहान पर आपस मे काना-फूसी करने लगे—"अरे भाई, ये तो 'दूत' आगए मालूम होते है।" फिर कहते, "अब क्या है, जमींदारों से जमीन छीन ली जायंगी। ज़ार उन्हें पेशन दे देंगे।" किसान नवयुवक ज़रा और भी जोश में भर गए और सरकारी पुलिस के सिपाहियों के सामने अकड़-अकड़कर कहने लगे—"बच्चा, ठहरो जरा। अबकी हमारी पारी है। तुम राक्षसों के शासन का अब अत आ चुका है।"

आखिर उन लकड़ी चीरनेवालों की कीर्ति-कथा एक पुलिस के अधि-कारी के कानों तक पहुंची। उसने उन दोनों को गिरफ्तार कर लिया। कितने ही किसानों को गार्ड बनाकर पुलिसवाले उन्हें हेडक्वार्टर की तरफ ले चले। रास्ते में एक गांव पड़ा। वहां एक उत्सव मनाया जा रहा था और ग्राम्य जनता खाने-पीने में मस्त थी। ज्योंही ये लोग पहुंचे कि किसानों ने कहा—"कैदी लोग है ? बहुत वक्त पर आये। आओ, चाचा!" किसान

उन सबको अपने घर ले गए और घर की बनी शराब डटकर पिलाई। पुलिस के गार्डों से भी शराब पीने के लिए कहा गया, वे तो पहले से ही तैयार बैठे थे। उन्होंने खुद तो पी ही, साथ ही यह भी कहा कि इन कैदियों को भी पिलाओ। सर्घेई को भी पीने के लिए कहा गया, पर बर्तन इतना बड़ा था कि सर्घेई ने बर्तन मुह से लगाकर पीने का बहाना तो किया, पर पी बिल्कुल नही। पुलिसवालों ने खूब डटकर पी। फिर उन्होंने सोचा कि इस हालत मे तो पुलिस के अफसर के पास चलना ठीक नही होगा। सवेरा होने पर चलेंगे। सर्घेई उनसे मनोरंजक बातचीत करता रहा। सब लोग बडे खुश हुए, और आपस मे कहने लगे—'देखो, बेचारे कैसे भले आदमी को पुलिस ने पकड़ लिया है!' एक नवयुवक किसान ने इशारा किया कि रात के वक्त हम दरवाज़ा खुला छोड देंगे। सर्घेई और उसका साथी इस इशारे को समझ गए और जब सब लोग सो गए, ये वहा से निकल भागे और सवेरे पांच बजते-बजते उस ग्राम से वे बीस मील आगे निकल गए। वहां से एक छोटे-से रेलवे स्टेशन से वे मास्को के लिए रवाना होगए। सर्घेई ने मास्को मे ही अपना अड्डा बना लिया और जब सेंटपीटर्सबर्ग के तमाम कार्यकर्ता पकड़ लिये गए, उस समय सर्घेई का अड्डा आंदोलन का मुख्य केंद्र बन गया।"

जनता में प्रचार-कार्य

क्रोपॉटकिन ने शहरों तथा ग्रामों मे क्रांतिकारी विचारधारा फैलाने-वालों का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। वे लिखते है:

प्रचारक लोग नाना प्रकार के रूप धारण करके और भिन्न-भिन्न पेशों में काम करने लगे थे। कोई लुहार की दुकान पर काम करता था तो कोई खेत पर और इस प्रकार धनीमानी आदमियों के जवान लड़के साधन-हीन किसानों तथा मजदूरों के संपर्क में आने लगे थे। मास्को में तो यहांतक हुआ था कि अमीर घराने की लड़कियों ने, जो ज्यूरिच विश्व-विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर चुकी थीं, कपास के कारखानों में नौकरी कर ली थी और

वह चौदह से सोलह घंटे प्रतिदिन कठिन परिश्रम करती थीं। यही नहीं, व फैक्टरियों से संलग्न छोटी-छोटी गंदी कोठरियों में रहती थीं और मामूली मजदूर औरतों जैसी जिंदगी बिताती थीं। यह एक महान् आंदोलन था, जिसमें कम-से-कम दो-तीन हजार आदमी अपना पूरा-पूरा समय लगाये हुए थे और इनसे दुगने-तिगुने आदमी भिन्न-भिन्न प्रकार से उन आगे बढ़ कर काम करनेवालों को पीछे से मदद दे रहे थे। सेंटपीटर्सबर्ग में काम करनेवाली मंडली इन लोगों में से कम-से-कम आधे आदमियों से संबंध बनाये हुए थी। हां, उनसे पत्र-व्यवहार गुप्त अक्षरों द्वारा ही हुआ करता था।

क्रांतिकारी साहित्य

रूस में प्रकाशित होनेवाले साहित्य पर कठोर नियंत्रण था। अपने लेख या पुस्तक में समाजवाद का नाम लेने या उसका जिक्र करने की भी मनाही थी। इसलिए विदेश में अपना प्रेस कायम करने का प्रबंध किया गया। किसानों तथा मजदूरों के लिए छोटी-छोटी पुस्तिकाएं तैयार करनी थीं और उसके लिए हम लोगों ने एक साहित्यिक कमेटी बना दी थी, जिसका मैं भी एक सदस्य था। इस कमेटी के पास काफी काम था। ये किताबें और पैमफ्लेट विदेश में छपवाई जाती थीं और फिर-फिर गोपनीय ढंग से एक जगह पर जमा करके तत्पश्चात उन्हें भिन्न-भिन्न केंद्रों को भेजना होता था, जहां से वे किसानों तथा मजदूरों में बटवाई जाती थीं। इसके लिए एक विस्तृत संगठन की जरूरत थी और तदर्थ काफी पत्र-व्यवहार तथा यात्राएं भी करनी पड़ती थीं। पुलिस की निगाह से बचते हुए अपने में सहानुभूति रखनेवाले पुस्तक-विक्रेताओं तक इन पुस्तकों को पहुंचाना कोई आसान काम नहीं था और इसके लिए गुप्त अक्षरों में काफी पत्र-व्यवहार भी करना पड़ता था। अलग-अलग केंद्रों के लिए अलग-अलग गुप्त अक्षर थे। स्त्रियां इस काम में बहुत सहायता देती थीं। इस प्रकार के पत्र-व्यवहार के खाके खींचने में वे रातें गुजार देती थीं।

कार्य करने का ढंग

हम लोगों की सभा-समितियों में सर्वथा भाईचारे का बर्ताव होता था। सभापति, मंत्री इत्यादि की शिष्टाचार युक्त कार्रवाइयां हमें सख्त नापसंद थीं। यद्यपि हम लोगों मे कभी-कभी बड़ी गरमागरम बहस होती थी, तथापि हम लोग पाश्चात्य देशों के सभा-संचालन के तौर-तरीकों का आश्रय लिये बिना अपना काम चला लेते थे। हार्दिक सच्चाई से काम लेना और विवाद-ग्रस्त विषयों के सर्वोत्तम हल निकाल लेना ही हम सबका उद्देश्य था। किसी भी प्रकार की कृत्रिम या नाटकीय बातचीत या रंग-ढंग से हमें नफरत थी। भोजन के लिए हम लोगों को मोटी रोटी, ककड़ी, पनीर और हल्की चाय, प्रचुर मात्रा में, बस यही मिल पाता था। पैसे का बिल्कुल ही अभाव हो, सो बात नही थी। पैसा था, लेकिन हम लोगों के बढ़ते हुए कार्य को देखते अपर्याप्त था, क्योंकि चीजों के छपाने में, किताबों के इधर-उधर भेजने में, पुलिस जिनकी तलाश में थी, ऐसे मित्रों के छिपाने में और नये कार्यक्रमों के प्रारंभ करने में बहुत पैसा खर्च हो जाता था।

सफेद-पोशों और मजदूरों की मनोवृत्ति

मेरी सहानुभूति खास तौर पर बुनकरों तथा फैक्टरियों के मजदूरों के साथ थी। सेंटपीटर्सबर्ग में हजारों ही ऐसे मजदूर थे, जो जाड़ों में शहर में चले आते थे और गर्मियों मे अपने ग्रामों को लौट जाते थे, जहां वे अपनी खेती करते थे। इन लोगों के बीच में हमारे आंदोलन ने जड़ पकड़ ली थी। ये लोग दस-दस, बारह-बारह मिलकर एक कमरा किराये पर ले लेते थे और उसीमें रहते थे। इन्हीं कमरों पर पहुंचकर हम लोग अपना प्रचार-कार्य करते थे। इन्हें हम लिखना-पढ़ना भी सिखाते थे और तत्पश्चात् उन्हें अपने विचार बतलाते थे। इन लोगों के पास जाने के लिए हमें किसानों-जैसे कपड़े पहनने पड़ते थे, क्योंकि जेण्टिलमैनों की पोशाक में इन लोगों के पास जाना खतरे से खाली नहीं था; उससे पुलिस को फौरन शक पैदा हो जाता। कभी-कभी ऐसा होता कि मैं जार के महलों से, जहां मुझे एक मित्र से मिलने जाना पड़ता था,

लौटकर अपनी शिष्ट-मंडली की पोशाक उतारता और किसानों-जैसे कपड़े पह॰, कर इन लोगों के पास गंदी बस्तियों में जाता। जब मैं उन्हें बतलाता कि विदेशों के मजदूर अपना संगठन कैसे करते है तो वे मेरी बातों को बड़े ध्यानपूर्वक सुनते और फिर अंत में कहते—हम लोगों को रूस में क्या करना चाहिए? "आप लोग अपना संगठन करके आंदोलन कीजिए। इसके सिवा दूसरा कोई तरीका नहीं।" फरांसीसी क्रांति के विषय में हम लोग उन्हें पेम्फलेट दे देते और हमारा यही संदेश होता, "दूसरों तक हमारी बात पहुंचाइए और जब हमारे-जैसे विचारों के आदमियों की तादाद ज्यादा हो जायगी तब कोई दूसरा कार्यक्रम सोचेंगे।" वे मजदूर हमारी बातों को भली-भांति समझ लेते थे। यही नहीं, वे इतने उत्साहित हो जाते थे कि उनके जोश को नियंत्रित करने की जरूरत पड़ जाती थी।

सन् १८७४ की पहली जनवरी का दिन मुझे खास तौर पर याद आता है। उसके पहले की रात मुझे सुशिक्षित मंडली में गुज़ारनी पड़ी थी। इन सुशिक्षित सफेदपोशों ने नागरिकों के कर्तव्य, देशहित इत्यादि के विषय में बड़ी लबी चौड़ी बातें हांकी थीं, लेकिन इनसब स्फूर्त्तिप्रद व्याख्यानों के पीछे एक भावना छिपी हुई थी, वह यह कि अपना हाथ-पैर बचाकर मूजी को कैसे टरकाया जाय! अपने निजी स्वार्थ की रक्षा ही इन लोगों का मुख्य उद्देश्य था, लेकिन किसीमें भी इतना साहस नही था कि खुलकर इस बात को स्वीकार कर ले कि हम उसी सीमा तक काम कर सकते हैं, जिस हदतक स्वयं हमारा जीवन संकट में न पड़े। नीच जाति के आदमी बड़े आलसी है, विकास तो धीरे-धीरे ही होता है, निरर्थक बलिदान से क्या फायदा, वैसे हम तो त्याग करने के लिए उद्यत हैं, इत्यादि दंभपूर्ण बातें सुनकर मेरे हृदय को बड़ा दुःख हुआ। दूसरे दिन सबेरे मैं जुलाहों की मीटिग में गया, मेरी पोशाक किसानों-जैसी ही थी, इसलिए उसमें शामिल होने में कोई दिक्कत नहीं हुई। मेरे साथी ने मेरा परिचय कराते हुए सिर्फ इतना ही कहा—"ये बोरोडिन हैं—अपने मित्र।" तब उन जुलाहों ने पूछा—"भई बोरोडिन! अपने विदेश-यात्रा के अनुभव हमें सुनाइये।" फिर मैंने उन्हें पाश्चात्य देशों के मजदूर-संगठन, उनके संघर्ष,

कठिनाई, आशा और निराशा के किस्से सुना दिये। बड़ी दिलचस्पी से उन्होंने सारी बातें सुनीं। श्रमजीवी संघों के विषय में सवाल किये और अंतर्राष्ट्रीय संघ के उद्देश्यों के विषय में भी पूछताछ की। तत्पश्चात् मुख्य सवाल यह था—"रूस में यदि हम लोग वैसा संगठन करें तो कहांतक सफलता मिलेगी?" मैंने उनसे साफ तौर पर कह दिया, "इस प्रकार के आंदोलन खतरे से खाली न होंगे। नतीजा यह हो सकता है कि हम लोगों को देश-निकाले का दंड दे दिया जाय और हम साइबेरिया भेज दिये जायं और शायद आप लोगों को महीनों के लिए जेलखाने की हवा खानी पड़ेगी, इस अपराध में कि आपने हम लोगों की बातें सुनीं!"

मेरी इन बातों से वे तनिक भी भयभीत न हुए। बोले—"आखिर साइबेरिया मे सिर्फ रीछ ही नही रहते, आदमी भी रहते है। जहां कुछ आदमी रह सकते है, वहां दूसरे भी रह सकते है। अगर आप भेड़ियों से डरते है तो जंगल में जाने का खयाल ही छोड़ दीजिए, इत्यादि।

और भविष्य में जब संकट का वक्त आया और इन जुलाहों में से बहुत से पकड़े गये, तो करीब-करीब सभीने बड़ी बहादुरी से काम लिया। उन्होंने हमारी रक्षा की और किसीने भी विश्वासघात नहीं किया।

मेरी गिरफ्तारी

अगले दो वर्षों में काफी धर-पकड़ हुई—राजधानी में और प्रांतों में भी। हर महीने हमें इस प्रकार के दुःखप्रद समाचार मिलते थे कि आज अमुक साथी पकड़ा गया तो कल दूसरा। सन् १८७४ के अंत में इस प्रकार की गिरफ्तारियों की संख्या और भी बढ़ गई। पुलिस ने सेंटपीटर्सबर्ग के हमारे अड्डे पर छापा मारा और कई व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया। पुलिस बड़ी सतर्क होगई। अगर कोई विद्यार्थी मजदूरों की बस्तियों में चक्कर लगाता हुआ दीख पड़ता तो वह फौरन पुलिस की निगाह में चढ़ जाता। हमारी मंडली के अनेक व्यक्ति पकड़ लिये गए और सिर्फ ५-६ आदमी ही बच रहे। कुछ दिनों बाद मैंने सुना कि दो जुलाहे पकड़े गये है। वे सर्वथा अविश्वसनीय थे,

पर वे मुझे जानते थे—मेरे गुप्त नाम बोरोडिन से भी वाकिफ थे। एक सप्ताह के भीतर मुझे और मेरे एक मित्र को छोड़कर सब पकड़ लिये गए। हम लोगों के पास सेंटपीटर्सबर्ग को छोड़कर भाग जाने के सिवा और कोई चारा न था। पर यह काम हम करना नहीं चाहते थे। हमारा काम काफी फैला हुआ था। विदेशों में पेम्फ्लेटों की छपाई होती थी, चोरी-चोरी उन्हें रूस में लाया जाता था, कितने ही केंद्रों तथा क्षेत्रों पर उन्हें वितरित किया जाता था। चालीस प्रांतों में हमारा जाल फैला हुआ था और इस संगठन में हमारे दो वर्ष लग गये थे। इनके सिवा खुद सेंटपीटर्सबर्ग में मजदूरों के बीच काम करनेवाले हमारे चार केंद्र थे और उनमें छोटे-मोटे अनेक कार्य-कर्त्ता थे। इन सबको मॅझधार में छोड़कर कैसे भागा जा सकता था, जबतक कि इनसे पत्रव्यवहार करने और संबंध बनाये रखने का कोई इंतजाम न कर लिया जाता। हम लोगों ने दो नये मेंबर अपनी मंडली में शामिल किये और उन्हें सारा काम समझाना शुरू कर दिया। सर्ड कौफ ने अपना कमरा छोड़ दिया और वह अपने मित्रों के यहां रहने लगे—कभी किसीके तो कभी किसीके। मुझे भी अपना मकान छोड़ देना चाहिए था, पर मेरे सामने एक मुश्किल थी—वह यह कि मैंने फिनलैण्ड तथा रूस के एक भौगोलिक विषय पर अपनी रिपोर्ट तैयार की थी और उसे भूगोल-समिति के सामने पेश करना था। इसी कारण मुझे एक सप्ताह के लिए रुक जाना पड़ा। इस बीच अनेक अजनबी आदमी बहाने ढूढ़-ढ़ूंकर मेरे मकान के आसपास चक्कर लगाते रहे। इस बीच एक दिन एक जुलाहा जो पकड़ा गया था, मुझे अपनी गली में दीख पड़ा, जिससे मैं समझ गया कि मेरे मकान पर पुलिस की निगाह है। पर मै बिना उद्विग्न हुए यह सब देखता-सुनता रहा, क्योंकि मुझे अगले शुक्रवार को भूगोल-समिति के सामने अपनी रिपोर्ट पेश करनी थी।

मीटिंग हुई और उसमें काफी उत्साह प्रदर्शित किया गया। मेरे सिद्धांत की पुष्टि होगई और मीटिंग में यह प्रस्ताव रखा गया कि फिजीकल ज्याग्राफी विभाग का प्रधान मुझे बना दिया जाय। वहां जब प्रधान बनाने की बात हो

रही थी, मैं मन-ही-मन यह सोच रहा था कि आज अपने घर पर सोऊंगा या खुफिया पुलिस के जेलखाने में! बेहतर होता, अगर मै उस शाम को घर न लौटता। पर मै पिछले कुछ दिनों के परिश्रम से इतना थक चुका था कि मैंने घर ही जाने की बात सोची। उस रात को पुलिस ने छापा नहीं मारा। उस रात को मैंने वे सारे कागज-पत्र, जिनसे किसीको भी खतरा हो सकता था, जला डाले। अपना बोरिया-बिस्तर बांध लिया और चलने की तैयारी करने लगा। मैंने सोचा कि झुटपुटे के वक्त निकल भागूंगा। ज्योंही कुछ अँधेरा बढ़ा, मरी नौकरानी ने कहा—"आप दूसरे जीने से बाहर जाइए।" मैं समझ गया कि क्या मामला है। जीने से उतरकर मै घोड़ागाड़ी में बैठ गया और गाड़ी हंकवा दी। पहले तो मैंने समझा कि जान बची, पर थोड़ी देर में देखता क्या हूं कि एक तेज गाड़ी मेरा पीछा कर रही है। हमारी गाड़ी का घोड़ा कुछ अटका ही था कि वह गाड़ी हमसे आगे निकल गई। उस गाड़ी में मैंने उस जुलाहे की शकल देखी और उसके साथ कोई दूसरा आदमी भी बैठा देखा। उस जुलाहे ने मेरा नाम बोरोडिन लेकर हाथ का इशारा किया। मैंने सोचा कि शायद यह छूट गया है और मुझे कुछ सूचना देना चाहता है। ज्योंही हमारी गाड़ी रुकी, जुलाहे के उस साथी ने जो खुफिया पुलिस का आदमी था, जोर से चिल्लाकर कहा—"मिस्टर बोरोडिन, प्रिंस क्रोपॉटकिन, मै तुम्हें गिरफ्तार करता हूं।" पुलिसवालों को उसने पहले से इशारे से बुला लिया था। निकल भागना असंभव था। उस खुफिया पुलिसवाले ने मुझे एक कागज दिखलाया, जिस-पर पुलिस की मुहर थी। उसने मुझसे कहा, "आपको अपनी सफाई देने गवर्नर जनरल के यहां चलना है।"

मै समझ गया कि अबतक इन लोगों को मेरे बारे में कुछ शक था कि बोरोडिन मै ही हूं, पर जुलाहे की बात पर मेरे ध्यान देने के कारण उनका यह भ्रम दूर होगया। ये लोग मुझे खुफिया पुलिस के हेडक्वार्टर पर ले गये।

इसके बाद क्रोपॉटकिन ने खुफिया विभाग की जिरह का मनोरंजक वर्णन किया है, जिसे हम विस्तार-भय के कारण नहीं दे सकते।

पीटर के दुर्ग में

क्रोपॉटकिन उस बदनाम पीटर के किले में रक्खे गये, जहां रूस के कितने ही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्ति पहले रक्खे जा चुके थे। यह वही किला था, जिसका नाम रूस में दबी जबान से लिया जाता था। इसी किले में प्रथम पीटर ने अपने लड़के की हत्या की थी। इसीमें रानी तारकेनोवा एक गफा म बंद रखी गई थीं, जिसमें नदी में पानी आ जाने के कारण पानी भर गया था। इसी दुर्ग में द्वितीय कैथेराइन ने बीसियों आदमियों को मरवा डाला था। गरज यह कि पिछले एक सौ सत्तर वर्षों में यह किला अपने घोर अत्याचारों के लिए रूसभर में बदनाम हो चुका था। न जाने कितने व्यक्तियों का यहां वध किया गया, कितनों पर शारीरिक जुल्म, कितने ही धीरे-धीरे मौत के घाट उतरे और कितने ही उन अंधकारमय नम कोठरियों में पागल होगये। इसी किले में रूस में प्रजातंत्र का झंडा सर्व-प्रथम फहराने वाले डिसैम्ब्रिस्ट लोग बंद रहे थे, इसीमें कवि राइलीफ, शैवलैंको, डोस्टोवस्की, बाकूनिन, चर्नीशैवस्की, पिसारैफ तथा रूस के अनेक महान लेखकों को जेलखाने का दंड दिया गया था। यहीं काराकोजोफ को फांसी दी गई थी।

क्रोपॉटकिन ने आत्मचरित में लिखा है—"इसी किले में नैचेफ, जिसे स्विटजरलैण्ड ने रूस को सौंप दिया था, बंद है और उसका कभी छुटकारा न होगा। जार के द्वारा किसी अज्ञात अपराध के लिए दो आदमी और भी इसी किले में बंद हैं और ज़िंदगी भर यहीं रहेंगे, शायद उनका यही अपराध है कि जार के महलों की किसी गोपनीय बात का उन्हें पता है। इन सब दुर्घटनाओं की छाया मेरी कल्पना दृष्टि के सामने घूमने लगी, पर खास तौर पर ख्याल आया मुझे बाकूनिन का, जिन्हें सन् १८४८ में दो वर्ष के लिए आस्ट्रिया के एक किले में बंद कर दिया गया था, यही नहीं, जिन्हें कमर में जंजीर बांध कर एक दीवार से जकड़ दिया गया था और तत्पश्चात् जार की रूसी सरकार को सौंप दिया गया था और जो छः वर्ष इसी किले में रहे थ, और जो जार की मृत्यु के बाद ही छोड़े गये थे। बाकूनिन जब इस किले

से छूट थे तो वे अपने उन साथियों से, जो बाहर स्वतंत्र रहे थे, कहीं अधिक स्वस्थ और शक्तिशाली थे और उनमें कहीं अधिक ताज़गी थी। मैंने मन में कहा—"जब बाकूनिन इस किले में से जिंदा निकल गये तो मैं भी जिंदा निकलूंगा, यहां मरूंगा नहीं।.....चारों तरफ सन्नाटा था। कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती थी। मै अपने स्टूल को खिड़की के पास खींच लाया और उस पर खड़े होकर बाहर दिखाई देनेवाले आकाश के छोटे-से टुकड़े को देखने लगा। मैं किसी भी ओर से कोई आवाज सुनना चाहता था, पर कहीं से कोई भी ध्वनि नहीं आ रही थी। इस व्यापक सन्नाटे से मै तंग आगया और मैंने कुछ गाने की कोशिश की, पहले कुछ धीमे स्वर में, फिर पीछे कुछ जोर के साथ। मेरी कोठरी के छेद में से सिपाही ने आवाज दी, "श्रीमान, गाना न गाइए" मैंने जवाब दिया, "मै ज़रूर गाऊंगा।" सिपाही ने कहा, "हर्गिज नहीं।"

मैंने कहा—"तुम चाहे जो कहो, मै ज़रूर गाऊंगा।" तत्पश्चात् जेल का अध्यक्ष आया और उसने मुझसे यही कहा कि अगर तुम गाना गाते रहोगे तो मुझे किले के शासक से रिपोर्ट करनी पड़ेगी। मैंने उत्तर में कहा—"मेरा गला बैठ जायगा और फेफड़े भी खराब हो जायंगे, अगर मैं बोलूंगा नहीं और गाऊंगा नहीं।" इसपर जेल के अध्यक्ष ने कहा—"तब आप बहुत धीमे स्वर में गा सकते हैं—खुद अपने लिए।"

लेकिन यह सब निरर्थक था। कुछ दिनों बाद मेरी गाने की इच्छा ही जाती रही। सिद्धांत की रक्षा के लिए मैंने गाने के क्रम को जारी रखने का प्रयत्न भी किया, पर वह चल नहीं सका।

मैंने अपने मन में कहा :

"सबसे मुख्य बात यह है कि मैं अपनी शारीरिक शक्ति कायम रक्खूगा, मैं बीमार हर्गिज नहीं पड़ूंगा। मै ऐसी कल्पना करता हूं कि मुझे उत्तरी ध्रुव की यात्रा करनी पड़ी है और एक झोपड़ी में दो वर्ष बिताने पड़ रहे है। मैं काफी व्यायाम करूंगा, जमनास्टिक करूंगा और ऐसी कोशिश करूंगा कि चारों ओर का वातावरण मुझे बीमार न डाल दे। अपनी कोठरी के एक कोने से दूसरे कोने तक दस कदम होते हैं, अगर मैं डेढ़ सौ बार इधर-से-उधर जाऊं

तो दो तिहाई मील का टहलना हो ही जायगा। इस ढंग से मैं पांच मील रोज टहलूगा। दो मील भोजन के पहले, दो बाद को और एक सोने के पूर्व।....
मैंने दवात, कलम और कागज के लिए प्रार्थना की, पर वह अस्वीकृत कर दी गई। इस किले में बंद जेलियों को कलम-दावात तभी मिल सकती थी, जब स्वयं रूसी सम्राट जार से उसके लिए आज्ञा ले ली जाय। पर मेरे भाई अलेक्जेंडर ने मेरे लिए कलम दावात की अनुमति मंगा ली थी। एक दिन मुझे एक गाड़ी में बिठलाकर खुफिया विभाग के कार्यालय को ले जाया गया, जहां दो पुलिस के अफसरों के सामने मुझे अपने बड़े भाई से मिलना था। जब मैं पकड़ा गया, उस समय मेरे बड़े भाई ज्यूरिच में थे। अपने यौवन के आरंभ से ही एलेक्जेंडर की इच्छा विदेश जाने की रही थी, जहां कि आदमी स्वाधीनता-पूर्वक विचार कर सकते हैं, मनचाही किताबें पढ़ सकते है और स्वतंत्रता के साथ अपनी सम्मति भी प्रकट कर सकते है। रूस के दमघोंटू वातावरण से उसे नफरत थी। सच्चाई—बावन तोले पाव रत्ती सच्चाई और हद दर्जे की स्पष्टवादिता, ये मेरे बड़े भाई के गुण थे। वह किसी भी शकल में धोखा या व्यर्थाभिमान को बिल्कुल सहन नहीं कर सकता था। रूस मे लिखने बोलने की स्वाधीनता का अभाव था और साधारण जनता जुल्म के सामने सिर झुका देती थी और रूसी लेखक दबी जुबान से लिखने के अभ्यस्त हो चुके थे। ये सब बातें मेरे बड़े भाई के स्वभाव के सर्वथा विपरीत थीं। इसलिए उन्होंने स्विटजरलैण्ड जाने का निश्चय कर लिया था। इसके सिवा उनके दो बच्चे सैण्टपीटर्स बर्ग मे मर चुके थे। एक तो कुछ ही घंटे में हैजे से और दूसरा क्षय रोग से। इसलिए राजधानी में रहना भी उसे नापसंद था। मेरे भाई ने हम लोगों के आंदोलन में हिस्सा नहीं लिया था और जनता द्वारा विद्रोह की भावना में उनका विश्वास भी नहीं था।...वे स्विटजरलैंड के ज्यूरिच नगर में बस गये थे, पर जब उन्होंने मेरे पकड़े जाने की खबर सुनी तो वे अपना सब काम छोड़कर सेंट पीटर्सबर्ग चले आये। बातचीत के समय हम दोनों ही काफी उत्तेजित थे, मेरे भाई तो और भी ज्यादा। पुलिसवालों की वर्दी से ही उन्हें नफरत थी—रूस में स्वाधीन विचारों का गला घोटनेवाले पुलिसवालों से—

और उनकी मौजूदगी में वे अपनी यह सम्मति प्रकट भी कर देते थे। उनके रूस में वापस आने से मेरे हृदय में नाना प्रकार की शंकाएं उठ खड़ी हुई थीं। उनके ईमानदार चेहरे और प्रेम-पूर्ण नेत्रों को देखकर मुझे हर्ष हुआ था और यह जानकर खुशी हुई थी कि वे मुझसे महीने में एक बार मिल सकेंगे, पर मेरी हार्दिक इच्छा यही थी कि वे इस जगह से सैकड़ों मील दूर रहें। मुझे यह आशंका थी कि कभी-न-कभी वे भी पुलिस की निगरानी में इसी जेलखाने में लाये जायंगे। मेरी अंतरात्मा कह रही थी—"अरे! शेर की मांद में क्यों चले आये? जल्दी-से-जल्दी इस देश को छोड़ जाओ।" पर मैं जानता था कि जबतक मैं जेल में हूं, तबतक मेरा बड़ा भाई रूस छोड़ेगा नहीं।

मेरे बड़े भाई जानते थे कि कुछ काम न कर सकने के मानी होंगे मेरी मौत। इसलिए उसने पहले से ही अर्जी भेज रखी थी कि मुझे कलम, दवात, कागज मिल जाय। भूगोल-समिति चाहती थी कि मैं अपनी किताब को समाप्त कर दूं। मेरे भाई ने विज्ञान-समिति को भी इस मामले में दिलचस्पी लेने का अनुरोध किया। मेरे जेल मे दो-तीन महीने रहने के बाद एक दिन जेल के शासक ने आकर मुझे हुक्म सुनाया कि सम्राट ने मुझे अनुमति प्रदान कर दी है कि शाम तक मैं लिखने का काम कर सकता हू।

भाई की गिरफ्तारी

सबसे अधिक कष्टप्रद चीज थी चारों ओर का सन्नाटा।—कब्रिस्तान-जैसी शांति—जिसे तोड़ना असंभव था। बात करने के लिए कोई आदमी नहीं था। एक महीना गुजरा, दो गुजरे, तीन गुजरे, यहांतक कि पंद्रह महीने इसी सन्नाटे में गुजर गये। जेल का अध्यक्ष सबेरे आता था। वह सिर्फ इतना ही पूछता—"तमाखू या कागज तो नहीं चाहिए?" मैं उसे बातों में लगाने की कोशिश करता, पर वह चुप रह जाता! वह इधर-उधर निगाहें डालकर मानों मुझसे यह कहना चाहता था कि "मेरे ऊपर भी निगाह रक्खी जा रही है!" केवल कबूतर ही ऐसे जीव थे, जो मुझसे बातचीत करने में नहीं डरते थे। वे सबेरे और शाम को मेरी खिड़की पर आकर मेरे हाथ से दाना चुग

उस पत्र में मेरे स्वास्थ्य के विषय में लिखा था, बहुत-सी गिरफ्तारियों की चर्चा की थी और रूसी सरकार के ज़ालिमाना शासन के प्रति घृणा प्रदर्शित की थी। बस, इसी जुर्म में उसकी तलाशी ली गई और उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

मेरे भाई को खुफिया पुलिस ने कई महीने तक हवालात में रक्खा। मेरे भाई के बच्चे को क्षय होगया था, वह मरणासन्न था। डाक्टर ने कह दिया था कि वह बस दो-चार दिन का मेहमान है। मेरे बड़े भाई ने अपने दुश्मनों से कभी किसी रियायत के लिए प्रार्थना नहीं की थी, लेकिन इस बार मृत्यु के मुख में जानेवाले पुत्र के प्रेम ने उसे मजबूर कर दिया और उसने अपने बच्चे को देखने के लिए घंटेभर की मोहलत मांगी, पर पुलिस ने इसे अस्वीकार कर दिया। बच्चा चल बसा और उसकी मृत्यु ने मेरी भाभी को पागल-सा बना दिया। इसके बाद मेरे भाई को देश-निकाले का दंड दे दिया गया। वे साइबेरिया भेज दिये गए, जहां वे १२ वर्ष रहे और जीवित न लौटे।[1]

ज़ार के भाई का आगमन

एक दिन अकस्मात जार के भाई मेरी कोठरी में पधारे और आते ही उन्होंने कहा, "गुड डे क्रोपॉटकिन।" वे मुझे निजी तौर पर जानते थे और उन्होंने चिर-परिचित स्वर में मुझसे पूछा :

"क्रोपॉटकिन, भला यह कैसे मुमकिन हुआ कि तुम्हारे-जैसा प्रतिष्ठित आदमी, जो ज़ार का पार्षद रह चुका हो, इस चक्कर में आ फंसा ?"

---

[1] प्रिंस क्रोपॉटकिन ने आगे चलकर आत्मचरित में अपने अग्रज की मृत्यु पर जो शब्द लिखे हैं, वे अत्यन्त संयत हैं। दोनों भाई एक-दूसरे से बहुत प्रेम करते थे और अपने अग्रज की मृत्यु से निस्संदेह उनके हृदय को जबर्दस्त धक्का लगा होगा। पर उन्होंने सिर्फ इतना ही लिखा है, "मेरी कुटी पर कितने ही महीनों दुःख की घटा छाई रही और तत्पश्चात् वसंत ऋतु में एक नन्हे-से प्राणी का जन्म हुआ, जिससे उस घटा में कुछ ज्योति दीख पड़ी। उस लड़की का नाम मेरे भाई पर ही रखा गया।" सुना है कि क्रोपॉटकिन की सुपुत्री एलेक्जेंड्रा अभी जीवित हैं और पेरिस में कोई दूकान करती हैं।

मैंने उत्तर दिया—"हर आदमी के विचार अलग होते हैं।"

"विचार ! तो आपके विचार-क्रांति को उभारने के पक्ष में थे ?" ज़ार के भाई ने पूछा।

मैं इसका क्या जवाब देता ? यदि मै 'हां' कहता तो उसका मतलब यह होता कि जिस आदमी ने मजिस्ट्रेट के सामने अपना अपराध स्वीकार नहीं किया था, ज़ार के भाई के सम्मुख अपना कसूर कबूल कर लिया। और अगर मैं 'न' कहता तो वह सरासर झूठ होता। इसलिए मै चुपचाप खड़ा रहा। ज़ार के भाई मुझे चुप देखकर बोले :

"हां, तो जनाब अपने कारनामों से अब शर्मिंदा हैं ?" इस बात से मुझे क्रोध आगया और मैंने कहा, "मुझे जो कुछ कहना है, मैंने जांच करनेवाले मजिस्ट्रेट से कह दिया है, मै उसमें कुछ भी जोड़ना नही चाहता।"

फिर वे बोले :

"अरे भई क्रोपाटकिन, मै तुमसे कोई जांच करनेवाले मजिस्ट्रेट की हैसियत से थोड़े ही बात कर रहा हूँ। मै तो एक प्राइवेट आदमी की हैसियत से वार्तालाप कर रहा हूँ।"

उस वक्त मेरे मन में एक बात आई। क्यों न जार के सामने उनके भाई की मार्फत रूस की दुर्दशा के, किसानों के सर्वनाश के, अफसरों की हिमाकत के और शीघ्र ही आनेवाले भयंकर अकाल के समाचार पहुंचा दूं ? शायद उससे जार पर कुछ प्रभाव पड़े। फिर तुरंत ही मैंने मन में कहा, "ये सब फालतू बातें है, उनसे कुछ भी कहना बेकार है। गरीब जनता की दुर्दशा से वे भली भांति परिचित है और मेरे निवेदन से उनमें कुछ भी परिवर्तन न होगा।

तत्पश्चात् जार के भाई ने मुझे और बातों में उलझाने की कोशिश की और मैं ताड़ गया कि वह मुझसे अपराध कबूल कराना चाहता है। आखिर तंग आकर मुझे कहना पड़ा—"जनाब, मै अपने जवाब मजिस्ट्रेट के सामने दे चुका हूं।" यह सुनकर जार के भाईसाहब मेरी कोठरी छोडकर चल दिये।

× × ×

इसके बाद प्रिंस क्रोपॉटकिन ने अपने जेल से भागने का जो रोमांचकारी वृत्तांत लिखा है, उसे ज्यों-का-त्यों अगले अध्याय में दिया जाता है।

: ३ :

मैं जेल से कैसे भागा ?

दो साल बीत चुके थे। मेरे साथियों में से कई मर चुके थे, बहुत-से पागल होगए थे; लेकिन हमारे मुकदमे की सुनवाई की कोई चर्चा ही नहीं थी ! मेरा स्वास्थ्य भी दूसरे वर्ष का अंत होते-होते गिरने लगा था। लकड़ी का स्टूल (जिससे मैं कसरत करता था) भारी लगने लगा और पांच मील का टहलना मानो बड़ा लंबा सफर ! चूंकि किले में हम लोग साठ कैदी थे और जाड़ों में दिन छोटे होते थे, हममें से प्रत्येक तीसरे दिन सिर्फ बीस मिनट के लिए बाहर टहलने ले जाया जाता था। मैंने अपनी शक्ति को बनाए रखने की भरसक कोशिश की थी, लेकिन पूरे साल उत्तरी ध्रुव की सर्दी में रहने का असर होना ही था। साइबेरिया की यात्रा के बाद मेरे शरीर में रक्त-रोग के जो लक्षण प्रकट होने लगे थे, वे अब कोठरी की नमी और अंधेरे के कारण पूरी तरह से व्याप्त होगए। इस तरह की जेल की उस भयंकर बीमारी का मेरे शरीर पर पूरा-पूरा असर होगया !

आखिर १८७६ के मार्च अथवा अप्रैल में हमें बताया गया कि तीसरे दस्ते (खुफिया पुलिस) ने प्रारंभिक छान-बीन पूरी कर ली है और हमारा मुकदमा न्यायाधीशों के पास भेज दिया गया है। इसलिए हम अब कचहरी के पासवाली जेल में भेज दिये गए। यह जेल चार मंजिल की एक बड़ी भारी इमारत थी, जिसमें कोठरी-ही-कोठरी थीं। यह फ्रांस और बेलजियम के कारागारों के नमूने पर हाल ही में बनी थी। प्रत्येक कोठरी में आंगन की तरफ एक खिड़की थी और लोहे के छज्जों की ओर एक दरवाजा। चारों मंज़िलों के ये छज्जे लोहे के एक ज़ीने से मिले हुए थे।

हममें से अधिकांश को इस जेल में आना अच्छा लगा। यहां उस किले से कहीं अधिक चहल-पहल थी और बाहर के आदमियों से पत्र-व्यवहार,

अपने रिश्तेदारों से मिलने अथवा आपस में बातचीत करने की सुविधा भी अधिक थी। बिना किसी रोक-थाम के दीवारों पर ठुक-ठुक जारी रहती थी। इसी तरह मैंने अपने पड़ोसी युवक को पेरिस-कम्यून का सारा इतिहास सुना दिया, पर इसमें लगभग एक सप्ताह लग गया !

लेकिन मेरा स्वास्थ्य और भी ख़राब होगया। उस तंग कोठरी का, जो एक कोने से दूसरे कोने तक सिर्फ चार कदम थी, संकीर्ण वातावरण मुझे असह्य था। जैसे ही भाप की नलियां चालू की जातीं, वह बर्फ-जैसी ठंडी कोठरी एकदम हद से ज्यादा गरम हो जाती ! कोठरी में टहलने के लिए जल्दी-जल्दी मुड़ना पड़ता था, इसलिए थोड़ी देर में ही चक्कर आने लगते और दस मिनट की खुली हवा की कसरत भी, आंगन तंग होने के कारण, स्फूर्तिप्रद नहीं होती थी। जेल का वह डाक्टर, जिसके विषय में जितना ही कम कहा जाय, उतना ही अच्छा, 'अपनी जेल में' 'रक्त-रोग' का नाम भी नहीं सुनना चाहता था !

मुझे घर से खाना मंगाने की अनुमति मिल गई थी, क्योंकि मेरे एक रिश्तेदार वकील इस जेल के नज़दीक ही रहते थे। लेकिन मेरी पाचन-क्रिया इतनी ख़राब होगई थी कि मुश्किल से रोटी का छोटा टुकड़ा और एक-दो अंडे खा पाता। मेरा स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरने लगा और लोग कहने लगे कि अब मैं बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकूंगा। अपनी कोठरी में जाने के लिए जब मैं ज़ीना उतरता था, तो मुझे दो-तीन बार रुकना पड़ता था। मुझे याद है कि एक वृद्ध पहरेदार सिपाही ने मुझसे कहा था—"दुःख है कि तुम इस बसंत के आख़िरतक न बच सकोगे।"

मेरे रिश्तेदार अब अत्यंत चिंतित होगए। मेरी बहन हेलेन ने मुझे ज़मानत पर छुड़ाने का प्रयत्न किया; लेकिन शूबिन (अफसर) ने व्यंग्य से मुसकराते हुए उत्तर दिया—"अगर तुम डाक्टर का लिखा हुआ यह सर्टीफिकेट ले आओ कि तुम्हारा भाई दस दिन के भीतर मर जायगा, तो मैं उसे छोड़ दूंगा !" मेरी बहन यह जवाब पाकर कुर्सी पर से धड़ाम से गिर गई और अफसर के सामने ही सिसकने लगी, जिससे उस अफसर को संतोष ही हुआ

ोगा! लेकिन अंत में उसने अपनी यह प्रार्थना मंजूर करा ही ली कि मेरा लाज सेंटपीटर्सबर्ग में फौजी अस्पताल के सबसे बड़े डाक्टर द्वारा होना ाहिए। इस वृद्ध होशियार डाक्टर ने बहुत ही अच्छी तरह मेरी जांच की और ह इस निर्णय पर पहुंचा कि मुझे कोई भयंकर शारीरिक बीमारी नहीं, केवल ुद्ध वायु न मिलने के कारण रक्त-रोग होगया है। उसने मुझसे कहा—केवल शुद्ध वायु की ही तुमको ज़रूरत है।" थोड़ी देर के लिए वह असमंजस रहा और तत्पश्चात् उसने निश्चयपूर्वक कहा—"ज़्यादा बातचीत फिज़ूल । तुम्हें किसी भी हालत में यहां न रहने दिया जाना चाहिए, दूसरी जगह जना ही है।"

दस दिन बाद मुझे एक फौजी अस्पताल में भेज दिया गया। यह अस्पताल ंटपीटर्सबर्ग के बाहर बना था। इसमें बीमार अफसरों और कैदियों के ाए एक छोटी जेल भी थी। मेरे दो साथी, जब यह निश्चित हो चुका कि ह शीघ्र ही तपेदिक से मर जायंगे, इसी जेल में भेजे गए थे। यहां जल्दी ही री तंदुरुस्ती ठीक होने लगी। मुझे फौजी गार्ड के कमरे के पास ही एक बड़ा मरा मिला। कमरे में दक्षिण की तरफ़ लोहे के सीकचों की एक खिड़की ी। खिड़की के सामने एक सड़क थी, जिसके दोनों तरफ हरे-भरे पेड़ थे, ौर सड़क के उस पार खुली जगह थी, जहां दोसौ बढ़ई मियादी बुखार के ागियों के रहने के लिए छोटे-छोटे कमरे बनाते थे। रोज रात को करीब एक ंटेतक ये बढ़ई मिलकर गाना गाते थे। एक संतरी, जो मेरे कमरे पर ही नात था, सड़क पर पहरा देता रहता था।

मैं खिड़की को दिनभर खुली रखता और धूप के, जो मुझे मुद्दत से सीब नहीं हुई थी, मज़े लिया करता। यहां वसंत की स्वच्छ वायु में अच्छी रह सांस लेने का अवसर मिला और मेरा स्वास्थ्य ठीक होने लगा। मैं ल्का खाना पचा लेता, ताकत भी महसूस होने लगी और मैंने अपना काम फर नए उत्साह से आरंभ कर दिया। जब मैंने देखा कि मैं अपनी पुस्तक ा दूसरा भाग किसी भी तरह समाप्त नहीं कर सकता तो उसका सारांश ी लिख डाला—यह बाद को पहले भाग में ही छपा।

किले में मैंने एक साथी से, जो इस अस्पताल में रह चुका था, सुना था कि यहां से भाग जाना बहुत मुश्किल नहीं है। शीघ्र ही मैंने अपने मित्रों को यहां आने की सूचना दे दी। लेकिन भागना उतना आसान नहीं था, जितना मेरे दोस्तों ने मुझसे कह रखा था। मेरा पहरा और भी ज़्यादा कड़ा कर दिया गया और मेरा कमरे से बाहर निकलना भी बंद कर दिया गया। अस्पताल के सिपाही और संतरी यदि कमरे में आते, तो कभी एक या दो मिनट से ज्यादा नहीं ठहरते थे।

मित्रों ने मेरे छुटकारे के लिए कई-एक योजनाएं बनाईं। कुछ तो उनमें अत्यंत मनोरंजक थीं। उदाहरण के लिए एक योजना यह थी कि मैं खिड़की के लोहे के सींकचे काट लूं। फिर किसी बरसात की रात को, जब संतरी अपने संदूक में झपकी ले रहा हो, दो मित्र पीछे से आकर इस संदूक को इस होशियारी से उलट दें कि उसे चोट भी न लगे और वह संदूक से ढंक जाय! और इसी बीच में खिड़की से बाहर कूद जाऊं! लेकिन अचानक ही इससे अच्छी तरकीब निकल आई।

"बाहर टहलने की अनुमति मांगो।"—एक सिपाही ने धीरे-से मुझसे कहा। मैंने तदनुसार प्रार्थना की। डाक्टर ने मेरा समर्थन किया और हर रोज़ तीसरे पहर चार बजे के लगभग मुझे टहलने की आज्ञा मिल गई।

उस पहले दिन को, जब मैं टहलने निकला, मैं कभी नहीं भूलूंगा। निकलते ही मैंने देखा कि करीब २०० गज़ लंबा और १५० गज़ चौड़ा हरी घास का आंगन है। फाटक खुला रहता और उसमें से अस्पताल, सड़क और उसके राहगीर दीखते थे। जब मैं जेल की सीढ़ियों से उतरता तो आंगन और उस फाटक को देखते ही रह जाता, मानो पैर ही रुक गए हों! आंगन में एक तरफ जेल थी—करीब १०० गज़ लंबी छोटी इमारत थी, जिसके दोनों तरफ संतरियों के छोटे-छोटे संदूक थे। दोनों संतरी जेल के सामने इधर-से-उधर चक्कर लगाते रहते और इस तरह घास पर एक पगडंडी ही बन गई थी। मुझसे कहा गया कि मैं इसी पगडंडी पर टहला करूं। चूंकि दोनों संतरी भी इसीपर टहलते रहते थे, इसलिए मेरे और किसी संतरी के

बीच का फासला कभी १०-१२ गज़ से ज़्यादा न रहता, और अस्पताल के तीन सिपाही सीढ़ियों पर बैठकर चौकसी करते रहते।

इस बड़े अहाते की दूसरी ओर जलाऊ लकड़ी गाड़ियों से उतारी जा रही थी और कई किसान उसे दीवार के सहारे लगा रहे थे। अहाते के चारों तरफ़ मोटे तख़्तों की दीवार थी और उसका फाटक गाड़ियों के आने-जाने के लिए खुला रहता था। यह खुला फाटक मुझे बहुत अच्छा लगता। मन में सोचता, "मुझे इस तरफ दृष्टि नहीं गड़ानी चाहिए।" फिर भी मैं उसी तरफ देखता रहता! पहले दिन जब मुझे कोठरी में वापस पहुंचाया गया तो तुरंत बाहर के मित्रों को कांपते हुए हाथों से अत्यंत अस्पष्ट अक्षरों में मैंने लिखा—"इस समय इशारे की भाषा में लिखना असम्भव-सा प्रतीत होता है। यहां से भागना तना आसान लगता है कि बुखार-जैसी कंपकंपी मालूम होती है। आज ये लोग मुझे बाहर आंगन में टहलाने ले गए थे। वहां फाटक खुला था और नजदीक कोई संतरी भी न था। इस फाटक से मैं निकल भागूगा, यहां के संतरी मुझे पकड़ नही सकेंगे।" और फिर मैंने अपने भागने की तरकीब का खुलासा लिखा—"एक महिला को खुली गाड़ी में अस्पताल आना है। वह गाड़ी से उतरे। गाड़ी फाटक से लगभग ५० कदम की दूरी पर खड़ी रहे। फाटक के बाहर एक आदमी टहलता रहे। जब चार बजे मैं टहलने के लिए निकाला जाऊं, तो थोड़ी देर हाथ में टोप लिए टहलूंगा। यह आदमी इसका मतलब समझे कि यहां मेरी तैयारी है। फिर तुम लोगों को इशारा करना है कि 'सड़क साफ़ है'। बिना तुम्हारे इशारे के मैं नही भागूंगा, और जब एक दफा फाटक से बाहर हो जाऊं तो गिरफ्तार नहीं होना है। या तो आप लोग सामने का हरा बंगला, जो यहां से साफ़ दीखता है, किराये पर ले लें और उसकी खिड़की से इशारा कर दें, और यदि यह संभव न हो, तो अपना इशारा रोशनी या आवाज़ों से करना, जैसे गाड़ीवान किसी तरह उजाला कर दे। इससे भी बेहतर होगा कि कोई गाना होता रहे, जिसका मतलब होगा कि सड़क साफ़ है। संतरी शिकारी कुत्ते की तरह मेरा पीछा करेगा, लेकिन किसी तरह मैं उससे १०-५ क़दम आगे ही रहूंगा। सड़क पर मैं गाड़ी

में झपटकर बैठ जाऊंगा और फिर हम लोग भाग जायंगे। अगर इस बीच संतरी ने गोली मार दी, तो फिर चारा ही क्या है ? उससे बचना अपनी सूझ से बाहर है। फिर यहां जेल के भीतर निश्चित मौत के मुकाबले में यह खतरा कुछ बुरा तो है नहीं।"

कई सुझाव और भी दिये गए; लेकिन आखिर यही तरकीब स्वीकृत हुई। हमारे मित्रों ने तैयारियां शुरू कर दी। इसमें कुछ ऐसे सज्जनों ने भी भाग लिया, जो मुझे बिल्कुल न जानते थे। फिर भी उनका जोश ऐसा था, मानों उनके अत्यंत प्रिय मित्र का छुटकारा होने जा रहा हो। लेकिन इस उपाय में कुछ मुश्किलें थी और समय कम रह गया था। मैं खूब मेहनत करता, राततक लिखता रहता; लेकिन फिर भी मेरा स्वास्थ्य अच्छा होने लगा—इतनी जल्दी कि स्वयं मुझे आश्चर्य होता। जब मैं पहले दिन आंगन में लाया गया था तो धीरे-धीरे चलने में भी थकान मालूम होती थी और अब मैं दौड़ सकता था! लेकिन मैं तो अब भी उसी तरह धीरे-धीरे टहलता था, वरना मेरा टहलना ही बंद कर दिया जाता। डर लगता रहता कि कहीं मेरी स्वाभाविक फुर्ती सारा भेद ही न खोल दे! और इस बीच मेरे साथियों को इसके लिए बहुत-से आदमी जुटाने थे, एक तेज़ घोड़ा और अनुभवी गाड़ीवान ढूंढ़ना था और ऐसी बीसियों बाधाओं का भी खयाल करना था, जो इस तरह के षड्यंत्र में तत्काल उपस्थित हो जाती हैं। इनसब तैयारियों में लगभग एक माह लग गया और इस बीच किसी भी दिन मुझे पुरानी जेल में भेजा जा सकता था!

आखिर भागने का दिन निश्चित होगया। पुराने रिवाजों के अनुसार २९ जून संत पीटर और संत पाल का दिन है। मेरे मित्रों ने अपने षड्यंत्र में थोड़ी भावुकता का पुट देकर मेरे छुटकारे के लिए इसी दिन को निश्चित किया! उन्होंने मुझे सूचित कर दिया था कि जब मैं अपनी तैयारी का इशारा करूंगा, तो वे एक लाल गुब्बारा उड़ाकर मुझे जता देंगे कि बाहर सब ठीक है। फिर एक गाड़ी आवेगी, और आखिर में एक गाना होगा, जिससे मुझे मालूम होजाय कि सड़क साफ़ है!

२९ तारीख को मैं बाहर निकला और टोप उतारकर गुब्बारे का इंतज़ार करने लगा, लेकिन वहां कुछ भी न था। आधा घंटा बीता, सड़क पर गाड़ी की खड़खड़ाहट सुनाई दी। एक आदमी को गाते हुए भी सुना; लेकिन गुब्बारा नज़र नहीं आया ! आधा घंटा खत्म हुआ और मैं अत्यंत निराश होकर अपने कमरे में लौट आया। सोचा कि कुछ बाधा आगई होगी।

उस दिन सचमुच अनहोनी होगई थी। सेंटपीटर्सबर्ग में सैकड़ों गुब्बारे बाजार में बिका करते हैं, लेकिन उस दिन एक भी गुब्बारा न था ! एक छोटे बच्चे से एक गुब्बारा लिया गया, लेकिन वह पुराना था, उड़ा ही नहीं ! मेरे मित्र फिर एक चश्मेवाले की दूकान से हाइड्रोजन बनाने का यंत्र लाये। उससे एक गब्बारा भरा भी, लेकिन वह उड़ा ही नही ! हाइड्रोजन में नमी रह गई थी। समय थोड़ा बचा था। फिर एक छाते में गुब्बारे को बांधा गया और एक महिला इस छाते को ऊंचा करके अहाते की दीवार के सहारे सड़क पर चली, लेकिन मुझे कुछ भी न दीख पड़ा--दीवार बहुत ऊंची थी और वह महिला बहुत ठिगनी ! बाद को ज्ञात हुआ कि उस दिन गुब्बारे का न मिलना ही ठीक हुआ। जब मेरे भागने का समय निकल गया तो गाड़ी पूर्व-निश्चित रास्ते पर दौड़ाई गई। उसी सड़क पर दस-बारह गाड़ियां अस्पताल के लिए लकड़ी ढो रही थीं। इन गाड़ियों के कुछ घोड़े दाई ओर भागे, कुछ बाईं ओर। नतीजा यह हुआ कि हमारी गाड़ी बहुत धीमे-धीमे चल सकी और एक मोड़ पर तो बिल्कुल ही रुक गई। अगर मै उसमें होता तो निश्चित रूप से पकड़ लिया गया होता।

अब उस सड़क पर कई जगह इशारे देने का प्रबंध किया गया, जिससे मालूम हो जाय कि सड़क साफ़ है या नहीं। अस्पताल से दो मील की दूरी तक मेरे साथी संतरियों की तरह खड़े हुए। एक साथी हाथ में रूमाल लिये सड़क पर टहलता था—यदि सामने गाड़ी दीखे तो वह रूमाल जेब में रख ले। दूसरा साथी मूंगफली खाते हुए एक पत्थर पर तैनात था—जैसे ही गाड़ियां दीखें, मूंगफली खाना बंद कर दे। ये सब इशारे विभिन्न मित्रों द्वारा आखिर

उस घोड़ागाड़ीतक पहुंचने थे। मेरे मित्रों ने सामने का हरा बंगला भी, जो फाटक के सामने ही था, किराये पर ले लिया था, और जैसे ही सड़क साफ हो, उसकी खिड़की में एक आदमी को वायलिन बजाना था।

अब अगला दिन निश्चित हुआ। ज्यादा देरी खतरनाक होती। वास्तव में अस्पताल के अधिकारियों ने गाड़ी का आना-जाना नोट कर लिया था। कुछ संदेहात्मक खबरें भी उनके पास अवश्य पहुंच गई होंगी, क्योंकि भागने से एक रात पहले मैंने अफसर को संतरी से कहते हुए सुना था—"तुम्हारे कारतूस कहां है ?" संतरी ने अपने कारतूस निकाल लिये तो अफसर ने कहा—"क्या तुमसे नहीं कहा गया कि आज रात को चार कारतूस अपनी जेब में तैयार रखना ?" और वह तबतक वहां खड़ा रहा, जबतक संतरी ने चारों कारतूस अपनी जेब में न रख लिये ! जब वह चलने लगा तो फिर आज्ञा दी—"मुस्तैद रहो !"

उन सब इशारों की रूप-रेखा मुझतक पहुंचानी थी। दूसरे दिन दो बजे मेरी एक रिश्तेदार मुझे घड़ी देने जेल आई। वैसे तो मेरे पास हर चीज़ एक अफसर के मार्फत आती थी, लेकिन चूंकि यह घड़ी खुली थी, मेरे पास सीधी पहुंचा दी गई। इस घड़ी में एक छोटा पुर्जा था जिसमें सारी तरकीब लिखी थी । मैं तो उसे पढ़कर कांप गया ! कितनी हिम्मत और कैसी दिलेरी का काम था ! यदि किसीने घड़ी के ढक्कन को खोल लिया होता, तो वह महिला, जिसका पीछा पुलिस पहले से ही कर रही थी, तुरंत वहीं गिरफ्तार हो जाती। लेकिन मैंने देखा कि वह जेल के बाहर सड़क पर निकल गई और नौ-दो-ग्यारह होगई !

सदैव की भांति मैं चार बजे बाहर निकल आया और मैंने अपना इशारा कर दिया। थोड़ी देर में गाड़ी की खड़खड़ाहट सुनाई दी और हरे बंगले से वायलिन की ध्वनि भी आई। लेकिन उस वक्त मैं अहाते के दूसरे कोने पर था। मैं फाटक की तरफ चला—मन में सोचा, 'बस, कुछ क्षण और !' लेकिन फाटक के पास पहुंचते ही सहसा वायलिन बजना बंद होगया। करीब १५ मिनट बड़ी फिक्र में बीते। सोचता, 'वायलिन बंद क्यों होगया !' कुछ समय

बाद ही देखा कि कोई एक दर्जन गाडियां फाटक से अहाते में आई। तुरंत ही वायलिनवाले सज्जन ने एक जोशीली चीज़ छेडी, मानो वह कह रहा हो—"बस, यही वक्त है, आखिरी मौका!" मै धीरे-धीरे कांपता हुआ फाटक की ओर चला—इस आशंका में कि कही वायलिन फिर बंद न हो जाय!

फाटक पर पहुंचकर मैंने मुड़कर देखा कि संतरी ५-६ कदम पीछे था और उल्टी तरफ देख रहा था। 'बस यही मौका है'—मेरे मन में आया। तुरंत मैंने जेल की पोशाक उतार फेंकी और दौड़ने लगा। उस लंबी-चौड़ी पोशाक को उतारने का अभ्यास मै बहुत दिनों से कर रहा था। वह कोट इतना बड़ा था कि किसी भी तरह एक सपाटे में उतरता ही नहीं था। मैंने उसकी बांहों के नीचे की सिलाई काट दी, फिर भी काम नहीं चला। आखिर मैंने उसे दो हरकतों में उतारने का अभ्यास प्रारंभ किया, पहले उमे बांह से उतारता और बाद में उसे तुरंत जमीन पर पटकता। धीरे-धीरे मैं इस क्रिया में पारंगत हो गया।

मुझे अपनी शक्ति पर बहुत विश्वास नही था, इसलिए दम बाकी रखने के लिए शुरू में धीरे-धीरे दौड़ा। लेकिन मैं कुछ ही कदम भागा होऊंगा कि किसान, जो दीवार के सहारे लकड़ी लगा रहे थे, चिल्लाने लगे—"पकड़ो! पकड़ो! वह भाग रहा है!" और वे मुझे फाटक पर रोकने भी दौड़े। अब तो मै पूरे ज़ोर से दौड़ा। मेरे मन में बस केवल एक ही बात थी—'बस दौड़ो!' फाटक के नज़दीक गाड़ियों ने जो गड्ढे बना दिए थे, उनका भी मैंने खयाल नहीं किया।

मेरे मित्रों ने, जो हरे बंगले से मुझे भागते देख रहे थे, बादमें बताया कि संतरी ने तीन सिपाहियों के साथ मेरा पीछा किया था। संतरी और मेरे बीच फासला कम था और उसे बराबर यही विश्वास बना रहा कि वह मुझे पकड़ लेगा। कई दफा उसने अपनी बंदूक की संगीन मेरी पीठ में भोंकने के लिए आगे बढ़ाई भी। एक दफ़ा तो मेरे मित्रों को मालूम पड़ा कि मार ही दी। संतरी को पूरा विश्वास था कि वह मुझे पकड़ लेगा और इसीलिए उसने गोली

नहीं दागी। लेकिन मैं उससे आगे ही रहा और अंत में तो वह बिल्कुल पिछड़ गया !

फाटक के बाहर निकलकर देखा तो दंग रह गया——गाड़ी में एक अफ़सर फौजी टोप पहने बैठा था, उसने मेरी तरफ देखा भी नही। मन में सोचा, 'बस, खात्मा होगया !' मित्रों ने लिखा था कि सड़क पर आने के बाद हर्गिज न घबराना। वहां तुम्हारी रक्षा के लिए कई साथी उपस्थित रहेगे। मैंने निश्चय किया कि जिस गाड़ी में दुश्मन बैठा है, वहां न बैठूं। लेकिन जैसे-ही मैं गाड़ी के करीब पहुंचा, मैंने देखा कि इस अफसर के मेरे एक पुराने दोस्त की तरह के भूरे गलमुच्छे है। वह दोस्त हमारे गुट में तो नही था, लेकिन मेरा निजी मित्र अवश्य था और उसकी दिलेरी, और खासकर खतरे के मौके पर उसकी हिम्मत को मै जानता था। मन में सोचा, 'वह यहां इस वक्त कैसे आ सकता है !' मैं उसका नाम लेकर पुकारनेवाला ही था, लेकिन फिर अपनेको जब्त किया और उसका ध्यान आकर्षित करने के लिए तालियां पीटी। अब उसने मेरी ओर मुंह किया और तुरंत मै उसे पहचान गया !

वह रिवाल्वर हाथ में लिये तैयार था। मुझसे कहा——"जल्दी बैठो।" और तुरंत गाड़ीवान से कहा——"जल्दी भगाओ, नही तो तुम्हारी जान की खैर नही।" घोड़ा बहुत ही अच्छा था। वह खास इसी मौके के लिए लाया गया था। पूरी तेजी से दौड़ा। पीछे से सैकड़ों आवाज़ें आ रही थी——"पकड़ो ! पकड़ो ! भाग न जाय !" मेरे मित्र ने उसी समय मुझे एक शानदार ओवर-कोट पहना दिया। लेकिन पीछा करनेवालों से भी ज्यादा खतरा उस संतरी से था, जो अस्पताल के फाटक पर ही तैनात था, गाड़ी के खड़े होने की जगह के ठीक सामने। वह थोड़ा ही आगे बढ़कर आसानी से मुझे गाड़ी में चढ़ने से रोक सकता था। इसलिए एक मित्र को इस सिपाही का ध्यान बंटाने के लिए रखा गया था। और इस मित्र ने किया भी वह काम बड़ी खूबी से। वह सिपाही पहले अस्पताल के रसायन-विभाग में काम कर चुका था। मेरे मित्र ने खुर्दबीन और उसके द्वारा दीखनेवाली चीजों के बारे में उससे बहस छेड़ दी। मनुष्य-शरीर पर रहनेवाले एक कीटाणु के विषय में उसने सिपाही

मे पूछा—"तुमने कभी देखा है कि उसके कितनी लबी पूंछ होती है ?" 'क्या बकते हो ? पूंछ ?" फिर उसने कहा—"जीहा, उसके पूछ होती है और काफी वड़ी; खुर्दबीन से साफ दीखती है।" सिपाही ने उत्तर दिया—"अच्छा ! अपने ये किस्से तुम मुझे न सुनाओ।" मेरे मित्र ने फिर कहा—"मैं इसके बारे में ज्यादा जानता हूं—सबसे पहले तो खुर्दबीन से मैंने पूंछ ही देखी थी !" जब मै उनके नजदीक से भागकर झपाटे के साथ गाड़ी में बैठा तो यही बहस चल रही थी ! पाठकों को यह घटना किस्से-कहानी-सी जंचेगी, पर है यह पूर्णतया सत्य।

गाड़ी तुरंत एक तंग गली में मुड़ गई—उसी दीवार की तरफ, जिसके सहारे किसान लकड़ी रख रहे थे। अब ये सब किसान मेरा पीछा करने में लगे थे ! गाड़ी ने मोड़ इतने सपाटे से लिया कि करीब-करीब उलट ही गई ! मै तुरत आगे की ओर बढ़ गया और मित्र को भी आगे खींच लिया, इससे गाड़ी उलटने से बच गई ! तंग सड़क को पारकर हम बाई तरफ मुड़े। वहां एक सार्वजनिक संस्था के सामने दो सशस्त्र सिपाही खड़े थे। उन्होंने हमारे साथी की फौजी टोपी को सलामी दी। वह अब भी काफी उत्तेजित था, इसलिए मैंने उससे कहा—"शांत हो !" उसने उत्तर दिया—"सब ठीक हो रहा है, फौजी आदमी हमें सलामी दे रहे है।" अब गाड़ीवान ने मेरी तरफ मुंह किया। मैंने देखा कि वह भी अपना एक पुराना दोस्त है। हमारा घोड़ा तेज़ चाल से भागा जा रहा था। हर जगह हमें मित्र खड़े मिले। वे हमें इशारा कर रहे थे और हमारी सफल यात्रा के लिए मंगल-कामनाएं ! अब हम एक दरवाज़े पर उतरे और गाड़ी को आगे भेज दिया। मैं सीधा ज़ीना चढ़ गया और अपनी साली से मिला। वह बेहद खुश हुई और साथ अत्यंत चिंतित भी। हर्ष और विषाद के आंसू उसकी आंखों में थे। उसने मुझे तुरंत दूसरी पोशाक पहनने और अपनी विख्यात दाढ़ी को मुड़ा डालने के लिए कहा। दस मिनट के भीतर मेरा मित्र और मैं घर से चल दिये और एक दूसरी गाड़ी ले ली।

इस बीच अस्पताल के पहरेदार सिपाही और उनका अफसर बाहर

निकले और सोचने लगे कि क्या किया जाय। आस-पास एक मीलतक कोई गाड़ी ही न थी, सभी गाड़ियां हमारे मित्रों ने किराये पर ले रखी थी। उस भीड की एक किसान बुढ़िया इन सबसे होशियार थी। उसने धीरे-से कहा—"बेचारे क़ैदी ! वे लोग प्रोसपैक्ट पर अवश्य पहुंचेंगे, और अगर कोई आदमी इस रास्ते से दौड़कर सीधा वहां पहुंचे तो वे सचमुच ही पकड़े जायगे।" वह बिल्कुल ठीक कह रही थी। अफ्सर नजदीकवाली गाड़ी पर गया और उन आदमियों से प्रार्थना की कि वे घोड़े दे दें, लेकिन उन्होंने देने से साफ़ इंकार कर दिया और अफसर ने भी बल-प्रयोग नही किया ! और वे वायलिन बजाने-वाले सज्जन और वह महिला भी, जिन्होंने हरा बंगला किराये पर लिया था, बाहर निकल आये और उस बुढ़िया के साथ भीड़ में शामिल होगए ! जब भीड़ छट गई तो वे भी चपत होगए !

उस दिन तीसरे पहर मौसम भी अच्छा था। हम लोग उन टापुओं की ओर चल दिये, जिधर सेंटपीटर्सबर्ग के अधिकांश उच्च श्रेणी के लोग वसंत ऋतु में सूर्यास्त देखने जाया करते थे। रास्ते मे बगल की सड़क पर एक नाई की दूकान पर मैंने अपनी दाढ़ी भी सफाचट करा ली। अब मुझे पहचानना काफी मुश्किल था। हम लोग उन टापुओं में अपनी गाडी में इधर-से-उधर काफी देर तक चक्कर लगाते रहे। हमसे कह दिया गया था कि अपने रात के विश्राम-स्थल पर ज़रा देर से पहुंचें। अब सवाल था, इस बीच कहां जायं ? मैंने साथी से पूछा—"अब क्या करे ?" वह भी थोड़ी देर सोचता रहा और फिर तुरंत गाड़ीवान से कहा–"डोनोन, होटल ले चलो।" यह सेंटपीटर्सबर्ग का सबसे शानदार होटल था। वह बोला—"तुम्हें देखने के लिए कोई भी आदमी उस आलीशान होटल में न पहुंचेगा। वे तुम्हें सब जगह ढूंढ़ेंगे, लेकिन उस जगह का किसीको खयाल भी न आवेगा। वहां हम लोग भोजन करेंगे और फिर कुछ सुरापान भी—तुम्हारे छुटकारे की सफलता की खुशी में।"

भला, ऐसे मुनासिब सुझाव का मैं जवाब ही क्या देता ! इसलिए हम लोग डोनोन पहुंचे। रात के भोजन का समय था। कमरों में शानदार उजाला हो रहा था और वे आदमियों से भरे थे। उन सबको हमने पार किया और एक

अलग कमरा किराये पर लिया और वहां तबतक रहे, जबतक पूर्व निर्दिष्ट स्थान पर हमारे पहुंचने का समय नहीं होगया। जिस मकान में हम पहले-पहल उतरे थे, उसकी तलाशी हमारे वहां से हटने के थोड़ी देर बाद ही हो गई। लगभग सभी मित्रों के घरों की तलाशी हुई, लेकिन डोनोन में ढूंढ़ने की किसीको न सूझी !

दो दिन बाद मुझे एक कमरे में चले जाना था, जो मेरेलिए एक फर्ज़ी नाम से किराये पर ले लिया गया था। लेकिन जो महिला मेरे साथ जानेवाली थी,उन्होंने उस मकान को पहले देख आने की होशियारी की। उस मकान के चारों तरफ जासूस थे ! कई मित्र मुझसे कहने आए कि वहां जाना अब खतरे से खाली नही ! पुलिस अत्यत सतर्क हो गई थी। खुफिया-विभाग ने मेरी तस्वीर की सैकड़ों प्रतियां छपवाकर बंटवा दी थीं। जो जासूस मुझे पहचानते थे, मुझे सड़कों पर तलाश कर रहे थे। जो पहचानते नहीं थे, वे उन पहरेदारों को साथ लिये घूम रहे थे, जिन्होंने मुझे जेल में देखा था। ज़ार बहुत ही क्रुद्ध था कि उसकी राजधानी में ही मैं दिन-दहाड़े इस तरह भाग गया ! उसने हुक्म दे दिया था—"क्रोपॉटकिन को ज़रूर ही पकड़ना है।"

सेंटपीटर्सबर्ग में बने रहना असंभव था, इसलिए मैं नज़दीक के गांवों में छिपा रहा। पांच-छः दोस्तों के साथ मैं उस गांव में रहा, जहां इस मौसम में सेंटपीटर्सबर्ग के लोग तफरीह के लिए आया करते थे। फिर तय किया गया कि मुझे कही बाहर ही चला जाना चाहिए। लेकिन एक विदेशी पत्र द्वारा हमें मालूम होगया था कि बाल्टिक और फिनलैंड प्रदेशों की सीमाओं के सब स्थानों और स्टेशनों पर वे जासूस तैनात थे, जो मुझे पहचानते थे। इसलिए मैंने निश्चय किया कि उस तरफ चलू, जिस तरफ किसीका खयाल ही न पहुंचे। एक मित्र का पासपोर्ट लेकर और दूसरे मित्र को साथ लेकर मैंने फिनलैंड की सीमा पार की और सीधा बोथीनिया की खाड़ी के एक बंदरगाह पर पहुंचा। वहां से मै स्वीडन निकल गया।

जब मै जहाज पर बैठ गया और वह छूटने ही वाला था, तो मेरे साथी ने सेंटपीटर्सबर्ग की खबरें सुनाई। सरकार ने मेरी बहन हेलेन को

गिरफ्तार कर लिया था। मेरे भाई की साली भी, जो भाई और भाभी के साइबेरिया चले जाने के बाद मुझसे हर महीने मिलने आती थी, हिरासत में ले ली गई थी। मेरी बहन को तो मेरे जेल से भागने के बारे में कुछ भी पता न था। जब मैं भाग आया था, उसके बाद मेरे एक मित्र ने उसको यह खबर सुनाई थी। मेरी बहन ने बहुत-कुछ कहा, आरजू-मिन्नत की कि मुझे कुछ भी पता नहीं; लेकिन फिर भी पुलिस उसको उसके बच्चों से अलग करके ले गई और पंद्रह दिन जेल में रखा। मेरे भाई की साली को शायद कुछ भास तो हो गया था कि कुछ तैयारियां हो रही हैं; लेकिन उनमें उसका हाथ बिल्कुल न था। अधिकारियों में यदि तनिक भी बुद्धि होती तो समझ लेते कि जो महिला हर महीने नियमपूर्वक मुझसे मिलने आती थी, कम-से-कम वह तो इस षड्यंत्र में शामिल न होगी। उसको दो महीने जेल में रखा गया। उसके पति ने, जो एक प्रतिष्ठित वकील था, उसे छुड़ाने का भरपूर प्रयत्न किया। उसे अधिकारियों से उत्तर मिला, "हमें भी मालूम होगया है कि इस ड्यंत्र में इस महिला का कोई हाथ नहीं; लेकिन जिस दिन हमने इसे गिरफ्तार किया था, हमने ज़ार को यह सूचना भेज दी थी कि षड्यंत्र की संचालिका गिरपतार कर ली गई है और अब ज़ार को यह समझाने में देर लगेगी कि षड्यंत्र से इस औरत का कोई संबंध नहीं!"

बिना कहीं रुके मैं स्वीडन पार कर गया और क्रिश्चियाना पहुंचा। वहां हल नामक बंदरगाह के लिए जहाज मिलनेतक इंतज़ार करता रहा। जब मैं जहाज पर पहुंच गया, तो मैंने जरा चिंतित होकर सोचा—जहाज़ के ऊपर झंडा कहां का है—नारवे का, जर्मनी का या इंग्लैंड का? तुरंत मुझे दीखा, जहाज के ऊपर यूनियन जैक फहरा रहा है—वही झंडा, जिसके नीचे इटालियन, रूसी, फ्रांसीसी और सभी देशों के शरणार्थियों को शरण मिली है! मैंने हृदय से उस पताका का अभिनंदन किया।[1]

---

[1] उपर्युक्त वृत्तांत क्रोपॉटकिन के आत्म-चरित से लिया गया है।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

गांधीजी लिखित

प्रार्थना प्रवचन (भाग १) ३)
" " (भाग २) २।।)
गीता-माता ४)
पंद्रह अगस्त के बाद १।।), २)
धर्मनीति १।।), २)
द० अफ्रीका का सत्याग्रह ३।।)
मेरे समकालीन ५)
आत्मकथा ४)
आत्म-संयम ३)
गीता-बोध ।।)
ग्राम-सेवा ।=)
मंगल-प्रभात ।=)
सर्वोदय ।=)
नीति-धर्म ।=)
आश्रमवासियों से ।=)
हमारी मांग १)
सत्यवीर की कथा ।)
संक्षिप्त आत्मकथा १)
हिंद-स्वराज्य ।।।)
अनीति की राह पर १)
बापू की सीख ।।)
गांधी-शिक्षा (तीन भाग) १=)
आज का विचार (दो भाग) ।।।)
ब्रह्मचर्य (दो भाग) १।।।)
गांधीजी ने कहा था (५ भाग) १।)

विनोबाजी की लिखी

विनोबा-विचार (२ भाग) ३)
गीता-प्रवचन १।।)
शान्ति-यात्रा १।।)
जीवन और शिक्षण २)
स्थितप्रज्ञ-दर्शन १)
उपनिषदों का अध्ययन १)
ईशावास्यवृत्ति ।।।)
ईशावास्योपनिषद =)
सर्वोदय-विचार १=)
स्वराज्य-शास्त्र ।।।)
भू-दान-यज्ञ ।)
गांधीजी को श्रद्धांजलि ।=)
राजघाट की संनिधि में ।।=)
विचार-पोथी १)
सर्वोदय का घोषणा-पत्र ।)
जमाने की मांग =)

नेहरूजी की लिखी

मेरी कहानी ८)
हिन्दुस्तान की समस्याएं २।।)
लड़खड़ाती दुनिया २)
राष्ट्रपिता २)
राजनीति से दूर २)
विश्व इतिहास की झलक सं० ६)
हिन्दुस्तान की कहानी सं० २।।)

अन्य लेखकों की

आत्मकथा (राजेन्द्रबाबू) ८)
गांधीजी की देन " १।।)
गांधी-मार्ग " =)
महाभारत-कथा (राजाजी) ५)
कुब्जा सुन्दरी " २)
शिशु-पालन " ।।)
मैं भूल नहीं सकता २।।)
कारावास-कहानी (सु.नै.) १०)
गांधी की कहानी (लु.फि.) ४)
भारत-विभाजन की कहानी ४)
इंग्लैंड में गांधीजी २)
बा, बापू और भाई ।।)
गांधी-विचार-दोहन १।।)
गांधी अभिनंदन ग्रंथ ४)
गांधी श्रद्धांजलि ग्रंथ ३)
अहिंसा की शक्ति (ग्रेग) १।।)

प्रार्थना (वियोगी हरि)	॥)
अयोध्याकाण्ड " "	१)
भागवत-धर्म (ह. उ.)	६॥)
श्रेयार्थी जमनालालजी "	६॥)
स्वतन्त्रता की ओर "	४)
बापू के आश्रम में "	१)
मानवताके झरने (माव.)	१॥)
बापू (घ. बिड़ला)	२)
रूप और स्वरूप "	॥=)
डायरी के पन्ने "	१)
ध्रुवोपाख्यान "	।)
स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय)	१)
मेरी मुक्ति की कहानी "	१॥)
प्रेम में भगवान "	२)
जीवन-साधना "	१।)
कलवार की करतूत "	।)
हमारे जमाने की गुलामी "	।॥)
बुराई कैसे मिटे "	१)
बालकों का विवेक "	।॥)
हम करें क्या	३॥)
धर्म और सदाचार	१।)
अंधेरे में उजाला	१॥)
भारत सावित्री (वा. अग्रवाल)	३॥)
साहित्य और जीवन	२)
कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१)
हिमालय की गोद में	२)
कहावतों की कहानियां	२)
राजनीति प्रवेशिका	१)
जीवन-संदेश (ख.जिब्रान)	१।)
अशोक के फूल	३)
लोकमान्य तिलक	२॥)
हमारा कानून	५)
क्रांति की भावना	२॥)
तुकाराम गाथा-सार	१॥)
कित्तूर की रानी	२)
जीवन-प्रभात	।-)
का० का इतिहास (२ भाग)	२०)
पंचदशी (सं० य० जैन)	१॥)
सप्तदशी	२)
रीढ़ की हड्डी	१॥)
अमिट रेखायें	३)
एक आदर्श महिला	१)
राष्ट्रीय गीत	।)
तामिल-वेद (तिरुकुरल)	१॥)
आत्म-रहस्य	३)
थेरी-गाथाएं	१॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक	१॥)
जातक-कथा (आनंद कौ.)	२॥)
हमारे गांव की कहानी	१॥)
अन्नों की खेती	२)
दलहन की खेती	१)
साग-भाजी की खेती	३)
पशुओं का इलाज (प.प्र.)	॥)
रामतीर्थ-संदेश (३भाग)	१=)
रोटी का सवाल (क्रोपा०)	३)
नवयुवकों से दो बातें "	।=)
पुरुषार्थ (डा.भगवान्दास)	६)
काश्मीर पर हमला	२)
शिष्टाचार	॥)
भारतीय संस्कृति	३॥)
आधुनिक भारत	५)
फलों की खेती	२॥)
मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार	।॥)
भा० नवजागरण का इतिहास	३)
गांधीजी की छत्रछाया में	२॥)
भागवत-कथा	३॥)
जय अमरनाथ	१॥)
प्रगति के पथ पर ६ पुस्तकें	१॥)
संस्कृत-साहित्य-सौरभ (२८ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	।=)
समाज-विकास-माला प्रति पुस्तक	।=)

युवकोपयोगी अन्य साहित्य

१. क्रांति की भावना
२. नवयुवकों से दो बातें
३ रोटी का सवाल
४. राजनीति प्रवेशिका
५. आत्मोपदेश
६. अशोक के फूल
७. जीवन-साहित्य
८ भारतीय संस्कृति
९. साहित्य और जीवन

एक रुपया